कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत

णियमसार

सम्पादक एवं अनुवादक

बलभद्र जैन

श्री कुन्दकुन्द भारती प्रकाशन

विशेष सहायक हो सकती है। यह सिद्धान्त-आगमकाल था। इसी काल के आसपास निर्ग्रन्थ दिगम्बर सघ में से सचेल सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ था। यह सम्प्रदाय भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित श्रुत के नाम पर एक साधु-सम्मेलन मे स्मृति के आधार पर त्रुटित-अत्रुटित श्रुत वाक्यो की वाचना करके श्रुत के जीर्णोद्धार मे लगा हुआ था। सचेल परम्परा मे यह प्रथम वाचना कहलाती है। कुछ विद्वानो की मान्यता है कि सघ-भेद या श्रुत-भेद का मुख्य कारण कुछ जैन साधुओं का वस्त्र व्यामोह था। महावीर स्वयं निर्ग्रन्थ दिगम्बर थे और उनका धर्म अचेल धर्म था, यह श्वेताम्बर परम्परा भी मानती है। महावीर के अचेल धर्म की संगति आपवादिक वस्त्र को औत्सर्गिक मानकर नही बैठायी जा सकती। जब किसी कारण से मुनि-मार्ग मे आपवादिक वस्त्र घुस गया और कुछ सुख शील साधु उसके अभ्यस्त हो गये तो फिर उसका निकालना कठिन हो गया। इस एक शिथिलाचार के कारण ही श्वेताम्बर परम्परा मे वस्त्र के साथ ही साथ उपधियो की सख्या चौदह तक हो गई। इससे भी बडी विडम्बना यह हुई कि इस शिथिलाचार को सम्मत बनाने के लिए प्राचीन द्वादशाग के नाम पर नवीन शास्त्रों की रचना की गई और उन्हें मूल द्वादशाग श्रुत घोषित किया गया।

इस सम्बन्ध मे सुप्रसिद्ध श्वेताम्बर विद्वान पडित बेचरदास जी दोशी ने अपनी 'जैन साहित्य मे विकार' पुस्तक मे ठीक ही लिखा है कि 'किसी वैद्य ने सग्रहणी के रोगी को दवा के रूप मे अफीम सेवन करने की सलाह दी थी, किन्तु रोग दूर होने पर भी जैसे उसे अफीम की लत पड जाती है और वह उसे नही छोडना चाहता है, वैसी ही दशा इस आपवादिक वस्त्र की हुई।'

भगवान महावीर की मूल अचेल परम्परा अपने मूल रूप में स्थिर रही। अनेक कठिनाइयों के बावजूद इसने अपने मूल रूप को सुरक्षित रक्खा। यद्यपि इस काल में समस्त द्वादशाग का वेत्ता कोई मुनि विद्यमान नही था, किन्तु ऐसे मुनि अवश्य थे, जिन्हें द्वादशांग का एक देश स्मरण था। इन महर्षियों ने द्वादशांग के उस एक देश को—जिसके सम्बन्ध में उन्हे असंदिग्ध विश्वास था कि यह गुरु-परम्परा से अपने मूल रूप में सुरक्षित चला आ रहा है—शास्त्र के

रूप में लिपिबद्ध कर दिया। इन महर्षियों में मुख्य थे—धरसेन और उनके शिष्य भूतबलि एवं पुष्पदन्त और गुणधर तथा कुन्दकुन्द। धवला और जयधवला के उल्लेखानुसार धरसेनाचार्य को सभी अंगों और पूर्वों के एक देश का ज्ञान आचार्य-परम्परा से प्राप्त हुआ था। नन्दिसंघ की प्राकृत पट्टावली के अनुसार धरसेनाचार्य एक अंग के धारी थे। उन्होंने यह ज्ञान भूतबलि और पुष्पदन्त नामक दो मुनियो को दिया था। उन्होंने गुरु-प्रसाद से प्राप्त इस ज्ञान को (दृष्टिवाद अन्तर्गत द्वितीय अग्रायणी पूर्व को) षटखण्डागम नामक शास्त्र के रूप मे लिपिबद्ध किया। 'वृहत् टिप्पणिका' की सूची के अनुसार स्वयं धरसेन ने 'जोणि पाहुड' नामक शास्त्र की रचना की थी। गुण-धराचार्य ने ज्ञानप्रवाद नामक पाचवे पूर्व की दशम वस्तु अधिकार के अन्तर्गत तीसरे पेज्ज दोस पाहुड से कसाय पाहुड की रचना की। कुन्दकुन्द ने प्राय अपने सभी ग्रन्थो की रचना मूल द्वादशाङ्ग के तत्सम्बन्धी स्थलो के आधार पर की है। यथा समयसार की रचना ज्ञान प्रवाद के दशम वस्तु अधिकार के समय पाहुड़ के आधार पर हुई है। मूलाचार का आधार आचारांङ्ग नामक प्रथम अङ्ग है।

कुन्दकुन्द ने अपने ग्रथो को प्रामाणिकना बताने के लिए अन्त और बाह्य दो प्रकार के आधारों की सूचना दी है। प्रथम—उन्होंने मगलाचरण मे ही यह उल्लेख कर दिया है कि केवली और श्रुत केवलियो ने जो कहा है, मैं वही कहूँगा। अर्थात् मै केवली, श्रुत-केवलियो द्वारा प्ररूपित का वक्ता मात्र हूँ, कर्त्ता नही। यह उनके ग्रन्थो का अन्त आधार है। द्वितीय आधार बाह्य है। समयसार मे कहा है—'त एयत्तविहत्तं दाएह अप्पणो सविहवेण'। यह स्ववैभव केवल आत्मानुभव ही नहीं है क्योकि आत्मानुभव मे चूक नहीं होती। यह स्ववैभव शास्त्रो का वह ज्ञान और तत्सम्बन्धी स्मरण और धारणा शक्ति है, जो ज्ञान श्रुतकेवलियों से गुरू-परम्परा द्वारा मूल रूप मे उन्हे प्राप्त हुआ।

हमारे उपर्युक्त निवेदन का प्रयोजन यह है कि इन आचार्यों के पूर्व ही निर्ग्रन्थ वीतराग जैन सघ विभक्त हो गया था और महावीर द्वारा प्ररूपित जैन सिद्धान्त सम्मत अचेल परम्परा के प्रति विद्रोह करने वाला वर्ग वस्त्र धारण करने और उपधियों के बढ़ाते जाने को

द्वादशाङ्ग सम्मत सिद्ध करने मे प्रयत्नशील था। इतना ही नही, वह वर्ग द्वादशाङ्ग के नाम पर नवीन आगमों की रचना भी कर रहा था। सुनियोजित प्रचार, सुखशील साधनो द्वारा मुक्ति-प्राप्ति का सुलभ मार्ग, शास्त्र विहित योग्यताओ के बिना ही प्रत्येक जाति, वर्ण और लिङ्ग के लिये मुक्ति का मुक्त द्वार, नग्नताजन्य अनेक विपत्तियो से मुक्ति आदि ऐसे मनोवैज्ञानिक, तथाकथित उदार और प्रचारात्मक पहलू थे, जिनका जनमानस पर सहज ही प्रभाव पड़ता था। अपने बढते हुए प्रभाव और प्रचार को देखकर जैन सघ के विद्रोही और शिथिलाचारी वर्ग ने यह कहना प्रारम्भ कर दिया कि मूल जैन सघ तो हमारा है, हमारे रचे हुए अथवा सकलित किये गये ग्रन्थ ही द्वादशाङ्ग आगम है। इससे भगवान महावीर के मूल निर्ग्रन्थ परम्परा के नष्ट होने, उसके विकृत होने और मूल द्वादशाङ्ग के नाम पर रचित शास्त्रो के द्वादशाङ्ग के रूप मे प्रचलित होने का भयकर खतरा उत्पन्न हो गया था और जैन मुनियो का आदर्श आचार ऐसे धरातल पर पहुँच गया था, जिसे देखकर जैन मुनियो के आचार के सम्बन्ध मे गलत धारणा बन सकती थी।

इन्ही दिनो बौद्ध धर्म का नैरात्म्यवाद, क्षणिकवाद और शून्यवाद राजाश्रय पाकर जन मानस को उद्वेलित कर रहा था। इसके कारण जन मानस मे आत्मा और आत्मा के कल्याण के लिये किये जाने वाले तपश्चरण और चारित्र पर अनास्था उत्पन्न होने लगी थी। इस अनास्था को साँख्य मत के कूटस्थ नित्यवाद ने और हवा दी। कुल मिलाकर उस समय जनता की धार्मिक आस्थाये चचल हो रही थी और जनता मे दिशाहीनता की भावना व्याप्त थी। ऐसे काल मे कुन्दकुन्द ने जनता को सही धार्मिक मार्ग-दर्शन कराने और तीर्थङ्करो के अनादि निधन सत्य को प्रचारित करने का दायित्व अपने ऊपर लिया और अपने तप पूत व्यक्तित्व, अविरत साधना एव गम्भीर आगम ज्ञान के द्वारा सत्य धर्म की पुन स्थापना की, मुनि-धर्म के अन्दर व्याप्त विकृतियो का परिमार्जन किया और अध्यात्म की गगा बहाकर आत्मा के प्रति व्याप्त अनास्था को दूर किया। इसीलिए वे युग प्रवर्तक, युग पुरुष और क्रान्त दृष्टा के रूप मे सर्वाधिक विख्यात हुए। मगल पाठ में भगवान महावीर और गौतम गणधर के बाद उनके नाम-स्मरण का, उनके नाम पर मूल

सघ कुन्दकुन्दान्वय प्रचलित होने एव परवर्ती आचार्यों द्वारा अपने आपको कुन्दकुन्दान्वयी मानने का यही रहस्य है।

कुन्दकुन्द का समय

कुन्दकुन्द के समय के सम्बन्ध मे इतिहासकारो मे एकमत्य नही है। डा के बी. पाठक शिवकुमार महाराज को कदंबवंशी शिव मृगेश वर्मा मानते हैं, जिनके सम्बोधन के लिए समयसार के कनडी टीकाकार बालचन्द और संस्कृत टीकाकार श्रुतसागर की सूचनानुसार कुन्दकुन्द ने पंचास्तिकाय की रचना की। इस आधार पर पाठक कुन्दकुन्द का होना शक स ४५० अथवा वि. स. ५८५ में मानते हैं। डा ए. चक्रवर्ती की मान्यता है कि ये शिवकुमार शिव मृगेश न होकर पल्लववशी शिवस्कन्द वर्मा थे। इस आधार पर कुन्दकुन्द विक्रम की प्रथम शताब्दी के आचार्य माने हैं। डा ए. एन. उपाध्ये ने कुन्दकुन्द का काल ईसा की प्रथम शताब्दी का प्रारम्भ माना है। प नाथूराम प्रेमी भी इस अभिमत से सहमत हैं।

वर्तमान इतिहासकारो के समान प्राचीन धार्मिक वाङ्मय में भी इस सम्बन्ध मे मतभेद रहा है। तिलोयपण्णत्ति में भगवान महावीर के बाद की आचार्य-परम्परा दी है। उसके अनुसार दी हुई काल-गणना इस प्रकार है---

तीन केवलज्ञानी	६२ वर्ष
पाँच श्रुतकेवली	१०० वर्ष
११ अग १० पूर्व के धारी	१८३ वर्ष
पाँच एकादशाङ्गधारी	२२० वर्ष
चार आचाराङ्ग के धारी	११८ वर्ष
कुल	६८३ वर्ष

हरिवशपुराण, धवला, जय धवला, आदि पुराण और श्रुतावतार भी इससे सहमत है। धवला, जयधवला के अनुसार इस काल के बाद ही धरसेनाचार्य को सभी अंगों और पूर्वों के एक देश का ज्ञान आचार्य परम्परा से प्राप्त हुआ। नन्दि संघ की प्राकृत पट्टावली में अन्तिम आचाराङ्ग धारी लोहाचार्य तक का काल ५६५ वर्ष दिया

है। लोहाचार्य के बाद अर्हद्वलि, माघनन्दि, धरसेन, भूतबलि और पुष्पदन्त हुए। इन सबका काल उसमें जोड़कर ६८३ वर्ष का योग बताया है। वृहत् टिप्पणिका की सूची में धरसेन द्वारा वीर सं. ६०० मे 'जोणिपाहुड' की रचना का उल्लेख है। पट्टावली के अनुसार कुन्दकुन्द अर्हदवलि से ५१ वर्ष पूर्व मे पट्टासीन हुए थे। इस प्रकार कुन्दकुन्द का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी होता है। विद्वज्जन बोधक मे कुन्दकुन्द का समय वीर स. ७७० (ई. स. २४३) माना है। इन्द्रनन्दि के अनुसार कुन्दकुन्द वीर स. ७६३ (ई. स. २३६) मे हुए थे।

शास्त्रो, पट्टावलियो और विद्वानो की विभिन्न मान्यताओ का अध्ययन करके प्रो० हार्नले ने कुन्दकुन्द का समय ई० पू० १०८ निर्धारित किया* है और अब विद्वत्समाज ने इस निर्णीत काल को ही अपनी मान्यता प्रदान कर दी है। ज्योतिष काल-गणना के अनुसार आचार्य कुन्दकुन्द का जन्म शार्वरी नाम सवत्सर, माघ शुक्ला ५ ईसापूर्व १०८ में हुआ था।

कुन्दकुन्द का इतिवृत्त

कुन्दकुन्द एक समर्थ जिन शासन प्रभावक और युगप्रवर्तक आचार्य थे। किन्तु आश्चर्य है कि उनका प्रामाणिक इतिवृत्त आज उपलब्ध नही है। कथाकोषो, प्रशस्तियो, पट्टावलियो, शिलालेखो और कुछ ग्रन्थो मे उनके बारे मे कुछ स्फुट सूचनाएं प्राप्त होती है। उनको सग्रह करके भी उनका कोई जीवन-वृत्त समग्र रूप मे सामने नही आता। यह सब सामग्री प्राय· दसवी शताब्दी और उसके बाद की है। यदि इस सामग्री पर विश्वास किया जाय तो उनके इतिहास का रूप इस प्रकार बनता है—

कुन्दकुन्द का जन्म आन्ध्र प्रान्त मे कुन्दकुन्दपुरम्** मे हुआ था। पुण्यास्रवकथाकोष के अनुसार दक्षिण देश के कुरुमरई गांव के सेठ करमण्डु की पत्नी के उदर से कुन्दकुन्द का जन्म हुआ था। आराधना

---

*Indian Antiquary, Vol. XX, XXI.

**शिलालेखो क अनुसार कोणुकुन्दे, प्रचलित नाम कोण्डकुन्दी, गुन्टूर तहसील

कथाकोष के अनुसार उनका नाम कौण्डेश था और वे एक प्रभावशाली राजा हुए।

नन्दि संघ की पट्टावली के अनुसार उन्होंने ११ वर्ष की अल्पायु में ही निर्ग्रन्थ मुनि दीक्षा लेली तथा ३३ वर्ष तक मुनि-पद पर रहकर ज्ञान और चारित्र की सतत साधना की। ४४ वर्ष की आयु में (ई० पू० ६४) में आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित हुए। वे ५१ वर्ष १० मास १५ दिन इस पद पर विराजमान रहे। उन्होंने ९५ वर्ष १० मास १५ दिन की दीर्घायु पाई और ई० पू० १२ में समाधि-मरण द्वारा स्वर्गारोहण किया।

कुन्दकुन्द के नाम

उनका दीक्षा-नाम सभवत पद्मनन्दि था, किन्तु वे अपने जन्म-स्थान के नाम पर कौण्डकुन्द या कुन्दकुन्द के नाम से अधिक विख्यात हुए। शास्त्रो, प्रशस्तियों और शिलालेखों में उनके पाँच नामों की चर्चा की गई है। वे नाम हैं--कुन्दकुन्द, पद्मनन्दि, वक्रग्रीवाचार्य, एलाचार्य और गृद्धपिच्छाचार्य। इनमें से कुन्दकुन्द स्थानपरक है, पद्मनन्दि उनका वास्तविक नाम है और शेष तीन नाम घटनापरक है, जिनका उल्लेख या सकेत ज्ञानप्रबोध, दर्शनसार, पट्टावलियो और शिलालेखो मे किया गया है।

वक्रग्रीव नाम के सम्बन्ध मे यह किम्वदन्ती प्रचलित है कि एक बार कुन्दकुन्द स्वाध्याय कर रहे थे। स्वाध्याय करते हुए उन्हें समय का ध्यान नही रहा। वे अकाल मे स्वाध्याय करते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी ग्रीवा (गर्दन) वक्र हो गई। तबसे उनका नाम वक्रग्रीव प्रसिद्ध हो गया।

कई विद्वान् इस किम्वदन्ती को प्रामाणिक नहीं मानते। इनकी मान्यता है कि किसी रोग के कारण उनकी ग्रीवा वक्र हो गई थी। निर्ग्रन्थ-परम्परा मे वक्रगच्छ नाम से एक गच्छ था। श्रवण बेलगोला के शक सं. १०१२ के शिलालेख नं. ५५ मे वक्रगच्छ की आचार्य परम्परा भी दी है। सभव है, वक्रगच्छ नाम आचार्य कुन्दकुन्द के नाम पर ही पड़ा हो। इससे यह असंदिग्ध जान पड़ता है कि कुन्दकुन्द का एक नाम वक्रग्रीव अवश्य प्रचलित था।

कुन्दकुन्द के एलाचार्य नाम के सम्बन्ध मे एक किम्वदन्ती बहु-प्रचलित है और इसका आधार भी ज्ञान प्रबोध, दर्शनसार और कुछ शिलालेख हैं। इसके अनुसार तत्त्वाभ्यास करते हुए कुन्दकुन्द को कुछ शका उत्पन्न हुई। विचार करने पर उन्हें समाधान नहीं मिला। तब वे सामायिक करने बैठ गये और उन्होने सीमन्धर भगवान को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। सीमन्धर भगवान विदेह क्षेत्र मे समवसरण में विराजमान थे। उन्होंने वहां हाथ उठाकर 'सद्धर्म बृद्धिरस्तु' कहकर आशीर्वाद दिया। उपस्थित लोगो के मन में यह जानने का कुतूहल हुआ कि जब यहाँ नमस्कार करने वाला कोई नही है तो भगवान ने आशीर्वाद किसको दिया। इसका समाधान भगवान की दिव्यध्वनि मे हुआ कि यह आशीर्वाद भरत क्षेत्र स्थित कुन्दकुन्द मुनि को दिया गया है। इस पर दो देव (कही-कही दो चारण ऋद्धिधारी मुनि) कुन्दकुन्द के साथ अपने पूर्वभव के प्रेम-सम्बन्ध के कारण कुन्दकुन्द के निकट गये और रात्रि होने के कारण गुफा के द्वार पर रात भर बैठे रहे। प्रात काल उन्होने कुन्दकुन्द को सारी घटना सुनाई और भगवान सीमन्धर के पास चलने के लिए पूछा। कुन्दकुन्द की सहमति प्राप्त करके वे कुन्दकुन्द को ले गये। कुन्दकुन्द भगवान के सिहासन के नीचे बैठकर सात दिन तक निराहार रहकर भगवान की दिव्यध्वनि सुनते रहे। एक दिन वहाँ के चक्रवर्ती ने उन्हे सिहासन के नीचे बैठे हुए देख लिया। वहाँ के पुरुषो की पाँच सौ धनुष की अवगाहना के मुकाबिले कुन्दकुन्द की अवगाहना साढे तीन हाथ थी। यह देखकर चक्रवर्ती को बडा कुतूहल हुआ और उसने कुन्दकुन्द को चुटकी से उठाकर हथेली पर रख लिया और भगवान से विनयपूर्वक पुछा —भगवन्! यह एला (इलायची) के बराबर मनुष्य किस क्षेत्र का निवासी है। तब भगवान की दिव्यध्वनि हुई—यह भरत क्षेत्र के मुनि कुन्दकुन्द हैं, जिनको मैंने कल आशीर्वाद दिया था। चक्रवर्ती बड़ा प्रभावित हुआ और भक्तिपूर्वक कुन्दकुन्द मुनि को यथास्थान आसीन कर दिया। सात दिन पश्चात् देव उन्हे आकाश मार्ग से जब वापिस ले जा रहा था, तब मार्ग मे कही उनकी पिच्छी गिर गई। कुन्दकुन्द के कहने पर देव ने उन्हें भूमि पर उतारा। किन्तु पिच्छी तो सैकड़ों

योजन पीछे रह गई थी। तब कुन्दकुन्द ने वहाँ बिखरे पड़े गिद्ध के पंखों को एकत्रित करके पिच्छी बनाई और तब देव ने उन्हे उनकी गुफा तक पहुँचाया। वहाँ जाकर कुदन्कुन्द ने जन समूह को उपदेश दिया। फलत: सात सौ स्त्री-पुरुषों ने तत्काल मुनि-दीक्षा ले ली। कहते हैं उपर्युक्त घटना के कारण कुन्दकुन्द को एलाचार्य और गृद्धपिच्छाचार्य कहा जाने लगा।

उपर्युक्त घटना का एक किम्वदन्ती के रूप में तो महत्त्व हो सकता है, किन्तु सिद्धान्त और तथ्यो के प्रकाश में इस घटना पर विश्वास करना कठिन प्रतीत होता है। सिद्धान्त यह है कि कोई प्रमत्त संयत मुनि औदारिक शरीर से एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे नहीं जा सकता*। दसवी शताब्दी से पूर्व किसी आचार्य ने इतनी महत्त्व-पूर्ण घटना का उल्लेख नही किया। स्वय कुन्दकुन्द ने भी अपने किसी ग्रन्थ मे इस घटना का सकेत नहीं किया। यदि इस घटना के आधार पर कुन्दकुन्द का एक नाम गृद्धपिच्छाचार्य पड गया तो उमास्वामी, जिनको गृद्धपिच्छाचार्य कहा जाता है, किस घटना के कारण यह नाम प्राप्त कर सके।

हमारी विनम्र सम्मति है कि यह घटना प्रामाणिक नही है। एलाचार्य नाम के कई आचार्य हो गये हैं। एक कुरल काव्य के कर्त्ता एलाचार्य है। दूसरे एलाचार्य वीरसेन के गुरु है। हमारा विचार है कि एलाचार्य यह कुन्दकुन्द का नाम नही, पद है। शास्त्रों मे कई प्रकार के आचार्यों के उल्लेख मिलते है—यथा गृहस्थाचार्य, प्रतिष्ठाचार्य, बालाचार्य, निर्यापकाचार्य, एलाचार्य अथवा अनुदिशाचार्य। एलाचार्य उसे कहा जाता है कि गुरु के पश्चात् जो मुनि चारित्र का क्रम मुनि आर्यिकादि को बताता है, उसे अनुदिश या एलाचार्य कहा जाता है**। प्रायश्चित सग्रह, जिनेन्द्र पूजा पाठ आदि मे एलाचार्य का उल्लेख है। वस्तुतः एलाचार्य एक पद रहा है। कुन्दकुन्दाचार्य को भी यह पद प्राप्त था।

---

* गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा २३६ और पं० टोडरमल जी कृत उसकी टीका

** अनुगुरो पश्चाद्दिशति विधत्ते चरणक्रममित्यनुदिक् एलाचार्यं स्तस्मै विधिनां

—भगवती आराधना, १७७

इसी प्रकार गृद्धपिच्छाचार्य यह भी एक विशेषण कहना उपयुक्त होगा। कुन्दकुन्द ने बलपूर्वक यह प्रतिपादित किया था कि 'णिप्पिच्छस्य णत्थि णिव्वाणं' अर्थात् पिच्छीहीन मुनि को निर्वाण प्राप्त नहीं होता। पिच्छी के प्रति उनके अत्यधिक आग्रह अथवा गृद्धता के कारण ही लोग उन्हे गृद्धपिच्छाचार्य कहने लगे हों तो इसमे कोई आश्चर्य नही है।

कुन्दकुन्द के गुरु

कुन्दकुन्द के गुरु का क्या नाम था, इसका उल्लेख हमें नहीं मिलता। बोधपाहुड* मे उन्होने स्वयं अपने आपको भद्रबाहु का शिष्य कहा है और अगली गाथा मे उन्होंने भद्रबाहु को अपना गमक गुरु बताया है। गमक का अर्थ है बोधक, निश्चायक। गमक शब्द गम धातु से बना है, जिसके अनेक अर्थों मे से बोध, ज्ञान, मार्ग ये अर्थ भी हैं।** भद्रबाहु को गमक गुरु कहने का प्रयोजन स्पष्ट है। भद्रबाहु अन्तिम श्रुत केवली थे। उन्हें सम्पूर्ण ग्यारह अङ्ग और चौदहपूर्व अर्थात् द्वादशांग का पूर्ण ज्ञान था। उनके काल में ही, अकाल के समय, स्थूलिभद्र के नेतृत्व मे कुछ मुनियो ने निर्ग्रन्थ परम्परा के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था और वस्त्र धारण करके शिथिलाचार का पोषण प्रारम्भ कर दिया था। भद्रबाहु ने जो ज्ञान दिया, जो मार्ग बताया, वही साक्षात् सत्य जिनधर्म है। कुन्दकुन्द अपने कथन की प्रामाणिकता बताने के लिये अपने आपको भद्रबाहु की साक्षात् परम्परा से जोडते हुए उन्हें अपना गमक गुरु और अपने आपको उनका शिष्य बताते हैं। उनके कहने का रहस्य यह है कि भद्रबाहु श्रुतकेवली थे, वे द्वादशाग और चौदह पूर्वों के पूर्ण ज्ञाता थे, वे ही मेरे ज्ञानदाता, सन्मार्गदर्शक परम्परा गुरु हैं, शिथिलाचार पोषक मेरे गुरु नही हैं।

---

*सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु ज जिणे कहियं।
सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स ॥ — बोधपाहुड, ६१
बारस अंगवियाणं चउदस पुव्वंग विउलवित्थरणं।
सुयणाणि भद्दबाहु गमयगुरू भयवओ जयओ ॥ — ,, ६२

**पाइअ सद्दमहण्णवो, पृ० २८७

लेकिन यह तो परम्परा गुरु की बात है, उनके साक्षात् गुरु कौन थे ? नन्दिसंघ की पट्टावली में इस प्रकार आचार्य-परम्परा दी है—भद्रबाहु, गुप्तिगुप्त, माघवनन्दि, जिनचन्द्र, कुन्दकुन्द। इसके आधार पर जिनचन्द्र को कुन्दकुन्द का गुरु माना जाता है। इसी प्रकार पंचास्तिकाय की टीका में आचार्य जयसेन ने 'कुमारनन्दि सिद्धान्त-देव शिष्यै' इस वाक्य द्वारा कुन्दकुन्द को कुमारनन्दि सिद्धान्त देव का शिष्य स्वीकार किया है। सभव है, ये दोनों ही उनके गुरु हों—एक दीक्षागुरु और दूसरा शिक्षा-गुरु। इन उल्लेखों को निराधार मानने का कोई कारण नहीं है, ये ही वे सूत्र हैं, जिनसे इतिहास का ताना-बाना पूरा जा सकता है।

कुन्दकुन्द की रचनायें

कुन्दकुन्द रचित ग्रन्थों की सूची लम्बी है। उनके द्वारा रचित ग्रन्थों में सर्वसम्मत नाम इस प्रकार हैं—समयसार, प्रवचनसार, पचास्तिकाय, नियमसार, रयणसार, वारस अणुवेक्खा, दंसणपाहुड, चारित्त पाहुड, सुत्त पाहुड, बोधपाहुड, भावपाहुड, मोक्खपाहुड, लिंगपाहुड, सील पाहुड, सिद्ध भक्ति, श्रुत भक्ति, चारित्र भक्ति, योगि भक्ति, आचार्य भक्ति, निर्वाण भक्ति, पचगुरु भक्ति, थोस्सामि थुदि।

इनके अतिरिक्त मूलाचार और तिरुक्कुरल ग्रन्थ भी कुन्दकुन्द के कहे जाते हैं। किन्तु इनके सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं हैं। यह भी कहा जाता है कि कुन्दकुन्द ने ८४ पाहुडों और षड्खण्डागम के प्रथम तीन खण्डों पर परिकर्म नामक टीका की रचना की थी। पाहुडों में वर्तमान में आठ पाहुड उपलब्ध होते हैं, शेष उपलब्ध नहीं हैं। इसी प्रकार परिकर्म टीका भी उपलब्ध नहीं है। यद्यपि कोश-कारों के अनुसार पाहुड का शब्दार्थ उपहार, परिच्छेद आदि अनेक विध हैं, किन्तु यहाँ पाहुड जैन विद्या का एक पारिभाषिक शब्द है। द्वादशांग वाणी का बारहवाँ अंग दृष्टिवाद कहलाता है। उसके पाँच भेद हैं—परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका, इनमें पूर्वगत श्रुत के चौदह भेद हैं। इनमें प्रत्येक के अनेक वस्तु अधिकार होते हैं और प्रत्येक वस्तु अधिकार में बीस-बीस पाहुड होते हैं। कुल

प्राभृतो की संख्या ३६०० है। इस प्रकार पाहुड पूर्वो के अवान्तर परिच्छेद है। हमारी विनम्र मान्यता है कि कुन्दकुन्द के काल तक जो पाहुड अपने समस्त रूप मे अथवा आंशिक रूप में सुरक्षित बचे हुए थे, उनका सकलन अथवा उनकी रचना कुन्दकुन्द ने की थी। ऊपर जिस परिकर्म की चर्चा आई है, सभवत वह भी दृष्टिवाद श्रुत के परिकर्म नामक भेद का सुरक्षित अश ही सकलित या गुम्फित किया गया था।

कुन्दकुन्द की भाषा

कुन्दकुन्द की भाषा जैन शौरसेनी है। केवल कुन्दकुन्द ही नही सम्पूर्ण दिगम्बर वाङ्मय, जो प्राकृत मे रचा गया है, जैन शौरसेनी मे ही गुम्फित हुआ है। षट्खण्डागम और समयसार से लेकर कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गोम्मटसार इसी भाषा मे रचे गये है। जैन शौरसेनी मे यद्यपि अनेक शब्द शौरसेनी और अर्धमागधी के भी मिलते है, फिर भी यह भाषा मागधी और जैन महाराष्ट्री प्राकृतो के अधिक निकट है। जैन शौरसेनी मे अकारान्त कर्त्ता एक वचन ओ मे परिवर्तित हो जाता है। इसमे त के स्थान पर द और थ के स्थान पर ध हो जाता है। जैसे सुदकेवली भणिदो, कुधदि, भणदि, होदि। सस्कृति के क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर त्ता, य, च्चा और दूण प्रत्यय लगते है। जैसे विजाणित्ता, भविय, किच्चा, जाणिदूण। क्रियातिपत्ति मे भणेज्ज, जाणेज्ज, करेज्ज या इसके आकारान्त रूप मिलते है। ऐसे ही अन्य नियम है, जिनके द्वारा अन्य प्राकृतो की अपेक्षा जैन-शौरसेनी मे स्वरो, व्यजनो, धातुरूपो और सज्ञारूपों आदि मे भिन्नरूपता हो जाती है।

कुन्दकुन्द ने अपने सभी ग्रन्थो की रचना जैन शौरसेनी मे ही की है। इस प्राकृत के मूल में शूरसेन (ब्रज) मे बोली जाने वाली मुख्य है। यह कितने आश्चर्य की बात है कि सुदूर दक्षिण के निवासी कुन्दकुन्द ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश के शूरसेन जनपद की बोली को अपनी रचनाओ का आधार बनाया। उन्होंने अपनी भाषा मे मगध और महाराष्ट्र में बोली जाने वाली बोलियो के शब्दों को भी सम्मिलित करके भाषा को एक नया आयाम प्रदान किया। इस प्रकार भाषा-भेद की संकीर्णता से ऊपर उठकर महर्षि कुन्दकुन्द ने आज से

दोसहस्राब्दो पूर्व में उत्तर और दक्षिण की भाषात्मक एवं भावनात्मक एकता का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया।

नियमसार का परिचय

नियमसार आचार्य कुन्दकुन्द की महत्त्वपूर्ण कृति है। उनके तीन ग्रन्थ—समयसार, प्रवचनसार और पचास्तिकाय—प्राभृतत्रयी कहलाते है। यद्यपि जैन समाज में इनका जो विशेष महत्त्व और आदर है, वह महत्त्व और आदर नियमसार को प्राप्त नही है, किन्तु नियमसार के वर्ण्य विषय और उसकी प्रौढता को देखकर यह कहा जा सकता है कि नियमसार भी एक परमागम है और उसकी महत्ता किसी भी रूप मे कम नही है। किन्ही कारणो से इसका प्रचार इसकी महत्ता के अनुरूप नही हो पाया।

आचार्य ने 'नियमसार' इस नाम की सार्थकता को बताते हुए कहा है—जो नियम से करने योग्य अर्थात् दर्शन, ज्ञान, चारित्र हैं, वह नियम है और विपरीत के परिहार के लिए सार शब्द दिया गया है।

अपने वर्ण्य विषय की उत्थानिका मे आचार्य ने अपनी रचना का सम्पूर्ण सार इस प्रकार गुम्फित किया है—जैन शासन मे मार्ग और मार्ग का फल ऐसे दो भेद किये है। मोक्ष-प्राप्ति का उपाय तो मार्ग है और उस उपाय के सेवन का फल मोक्ष है। नियम अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र मोक्ष का उपाय या मार्ग है और इनका फल निर्वाण (मोक्ष) है।

प्रारम्भ के चार अधिकारो—जीवाधिकार, अजीवाधिकार, शुद्ध-भावाधिकार और व्यवहार चारित्राधिकार—में व्यवहार नय की मुख्यता से सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र का कथन किया गया है। इसमे आप्त, आगम और तत्त्वों के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा है। तत्पश्चात् आप्त, आगम और छह तत्त्वार्थों और व्यवहार चारित्र का वर्णन किया है। व्यवहार-चारित्र में पाँच व्रत, पाँच समिति और तीन गुप्तियों का कथन है।

तदनन्तर सात अध्यायो में निश्चयनय की दृष्टि से मुनियों के चारित्र का वर्णन किया गया है। इन अधिकारो के नाम इस प्रकार हैं –निश्चय प्रतिक्रमणाधिकार, निश्चय प्रत्याख्यानाधिकार, निश्चयालोचनाधिकार, परम समाधि अधिकार, परम भक्त्याधिकार, और निश्चयावश्यकाधिकार। अन्तिम बारहवा अधिकार शुद्धोपयोगाधिकार है। इसमे प्रारम्भ मे व्यवहार और निश्चय नय की दृष्टि से केवलज्ञान का स्वरूप बताया है। अन्त मे मुक्त होने वाले जीव की ऊर्ध्व गति, सिद्ध भगवान के स्वभाव गुण और मुक्त जीवो के लोकाकाश से आगे गति न होने का कारण दिया गया है। इस प्रकार यह परमागम बारह अधिकारो मे गुम्फित किया गया है।

उत्तरकालीन साहित्य पर नियमसार का प्रभाव

उत्तरकालीन अनेक आचार्यों ने अपनी रचनाओ के कथ्य मे नियमसार से मार्ग-दर्शन लिया है। अनेक रचनाओ मे भाव रूप से अथवा शब्दश अनुसरण किया है। अपने सीमित उद्देश्य और स्थान को दृष्टि मे रखते हुए हम यहाँ केवल तीन ग्रन्थो का ही उल्लेख करना पर्याप्त समझते है। ये ग्रन्थ है—उमास्वामी का तत्त्वार्थसूत्र, समन्तभद्र कृत रत्नकरण्ड श्रावकाचार और नेमिचन्द्र कृत द्रव्य-सग्रह। तत्त्वार्थसूत्र का प्रारम्भ मोक्ष-मार्ग के कथन से हुआ है और उसका अन्त मार्ग-फल अर्थात् केवलज्ञान और मोक्ष के कथन से हुआ है। नियमसार मे भी सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र को नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग माना है और अन्तिम अधिकार मे केवलज्ञान की चर्चा करते हुए निर्वाण (मोक्ष) का वर्णन किया है। नियमसार के 'धम्मात्थिकायभावे तत्तो परदो ण गच्छति' भाव को तत्त्वार्थसूत्र मे 'धर्मास्तिकायाभावात' इस सूत्र द्वारा व्यक्त किया गया है। इसी प्रकार रत्नकरण्ड श्रावकाचार मे सम्यग्दर्शन, आप्त आदि के लक्षण तथा द्रव्य सग्रह मे द्रव्यो के लक्षण नियमसार के लक्षणों से बहुत समानता रखते हैं। हमे विश्वास है, इन ग्रन्थों की रचना के समय इन आचार्यों के सामने नियमसार रहा था और उन्होंने इसकी शैली और लक्षणो से बहुत सहायता ली होगी।

आभार-प्रदर्शन

प्रस्तुत ग्रन्थ के संशोधन-सम्पादन की प्रेरणा मुझे पूज्य एलाचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज से मिली। पूज्य महाराज श्री की हार्दिक भावना रही है कि आचार्य कुन्दकुन्द का सम्पूर्ण साहित्य संशोधित-सम्पादित होकर मूल और उसके अर्थ सहित प्रकाशित हो। महाराज श्री की प्रेरणा और आदेश से मैं इस पुण्य कार्य में प्रवृत्त हुआ हूँ। आचार्य कुन्दकुन्द-साहित्य के समयसार और रयणसार ग्रन्थों का संशोधन-सम्पादन और प्रकाशन हो चुका है, उसी शृङ्खला में नियमसार का यह सशोधन-सम्पादन हुआ है। आशा है, विद्वज्जन और समाज पूर्वोक्त दोनों ग्रन्थो के समान इस ग्रन्थ को भी अपना स्नेह और आदर प्रदान करेगा। मैं पूज्य महाराजश्री के चरणों में अपने विनम्र श्रद्धा-सुमन समर्पित करता हूँ।

बलभद्र जैन

दीपावली
२ नवम्बर, १९८६

विसयाणुक्कमणिका

नियमसार की संक्षिप्तसार सहित विषयानुक्रमणिका

गाथा-१ मंगलाचरण

गाथा के पूर्वार्द्ध में वीर जिन को नमस्कार किया है तथा उत्तरार्द्ध मे 'नियमसार' ग्रन्थ के कथन की प्रतिज्ञा की है।

गाथा-२ मोक्ष मार्ग और उसका फल

जिन शासन मे मार्ग और मार्ग-फल दो प्रकार के बताये हैं। उसमे मोक्ष का उपाय तो मार्ग है और निर्वाण उसका फल है।

गाथा-३-४ नियमसार नाम की सार्थकता

जो करने योग्य है, वह नियम है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र नियम है। उसका फल निर्वाण है। विपरीत भावों का परिहार करने के लिये सार शब्द लगाया है।

गाथा-५-९ व्यवहार सम्यक्त्व का स्वरूप

आप्त, आगम और तत्त्वार्थ के श्रद्धान को (व्यवहार) सम्यग्दर्शन कहते है। अठारह दोषो से रहित आप्त होता है। उसके मुख से निकले हुए पूर्वावर दोषरहित वचन आगम है। उसके द्वारा तत्त्वार्थ कहे गये हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश—ये तत्त्वार्थ हैं। ये गुण और पर्यायों से युक्त हैं।

गाथा-१०-१४ जीव का लक्षण

जीव उपयोगमय है। उपयोग के दो भेद हैं—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग के दो भेद हैं—स्वभाव ज्ञान और विभाव ज्ञान। केवल ज्ञान स्वभाव ज्ञान है।

वह अतीन्द्रिय और असहाय है। यह शुद्ध ज्ञान है। विभाव ज्ञान दो प्रकार का है– सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान। सम्यग्ज्ञान चार प्रकार का है - मति, श्रुत, अवधि और मन पर्यय। मिथ्याज्ञान तीन प्रकार का है–कुमति, कुश्रुत और कुअवधि।

दर्शनोपयोग के दो भेद है—स्वभाव दर्शनोपयोग और विभाव दर्शनोपयोग। केवल दर्शन स्वभाव दर्शनोपयोग है। वह अतीन्द्रिय और असहाय है। चक्षु, अचक्षु और अवधि ये तीन विभाव दर्शनोपयोग है।

गाथा-१४-१६ पर्याय के भेद

पर्याय के दो भेद है—निरपेक्ष (स्वभाव पर्याय) और स्व-परापेक्ष (विभावपर्याय)। नर, नारक, तिर्यञ्च और देव ये विभाव पर्याय हैं। कर्मोपाधि से रहित पर्याय स्वभाव पर्याय हैं। मनुष्य दो प्रकार के हैं—कर्मभूमिज और भोग-भूमिज। नरक सात प्रकार के हैं। तिर्यञ्च चौदह प्रकार के हैं। देव चार प्रकार के हैं।

गाथा-१७-१९ नयों की अपेक्षा जीव के गुण, पर्यायों का कथन

व्यवहार नय से आत्मा पुद्गल कर्मों का कर्त्ता, भोक्ता है। अशुद्ध-निश्चय नय से आत्मा कर्मजनित भावों का कर्त्ता, भोक्ता है। द्रव्यार्थिक नय से जीव नर, नारकादि पर्यायो से भिन्न है और पर्यायार्थिक नय से इन पर्यायो से जीव सयुक्त है।

विदियो अजीवाधियारो २-१८-३७ १७-३१

गाथा-२०-२९ पुद्गल के भेद

पुद्गल के दो भेद है- अणु (परमाणु) और स्कन्ध। स्कन्ध छह प्रकार के हैं–अतिस्थूल स्थूल (पृथ्वी, पर्वत आदि), स्थूल (घी, जल, तेल आदि), स्थूलसूक्ष्म (छाया, धूप आदि), सूक्ष्म स्थूल (चार इन्द्रियों के विषयभूत स्कन्ध),

सूक्ष्म (कर्मवर्गणा के योग्य स्कन्ध) और अतिसूक्ष्म (कर्म-वर्गणा से भिन्न स्कन्ध)।

स्वरूप ही जिसका आदि, मध्य और अन्त है, इन्द्रियो से ग्राह्य नही है और अविभागी है, वह परमाणु कहलाता है। वह दो प्रकार का है—कारण परमाणु और कार्य परमाणु। पृथ्वी, जल, तेज और वायु का जो कारण है, वह कारण परमाणु है और स्कन्ध का अन्तिम भाग कार्य परमाणु है। कार्य परमाणु एक रस, एक रूप, एक गन्ध और दो स्पर्श गुण वाला है, वह स्वाभाव गुण वाला है और स्कन्ध विभाव गुण वाला है। परमाणु रूप पर्याय स्वभाव पर्याय है और स्कन्ध रूप पर्याय विभाव पर्याय है। निश्चय से परमाणु को पुद्गल द्रव्य कहते है और व्यवहार नय से स्कन्ध को पुद्गल द्रव्य कहते हैं।

गाथा-३० धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य और आकाश द्रव्य

धर्मद्रव्य जीव और पुद्गलो को चलने मे और अधर्म द्रव्य ठहरने मे निमित्त है। आकाश द्रव्य सब द्रव्यो को स्थान देने मे निमित्त है।

गाथा-३१-३२ काल द्रव्य

समय और आवलि अथवा भूत, भविष्य और वर्तमान के भेद से व्यहार काल के दो अथवा तीन भेद है। लोकाकाश मे जो कालाणु है, वह निश्चय काल है। कालद्रव्य द्रव्यो के परिणमन का कारण है।

गाथा-३३-३७ द्रव्यों के बारे में विशेष ज्ञातव्य

धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य मे स्वभाव गुण पर्याय होती है। कालद्रव्य को छोडकर पाच द्रव्य अस्तिकाय है। पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है, शेष द्रव्य अमूर्तिक है। जीव चैतन्य गुणवाला है, शेष अचेतन है। पुद्गल द्रव्य के सख्यात, असख्यात और अनन्त प्रदेश होते है। धर्म अधर्म और एक जीव के असख्यात प्रदेश होते है। लोकाकाश के असख्यात और आलोकाकाश के अनन्त प्रदेश है। काल एक प्रदेशी है।

गाथा-१ आत्मा ही उपादेय है

आत्मा को (स्व) आत्मा ही उपादेय है, शेष सब तत्त्व हेय है। शुद्धात्मा कर्मजनित गुण-पर्यायों से रहित है।

गाथा-२-६ शुद्धात्म तत्त्व का स्वरूप

शुद्ध जीव के स्वभाव स्थान, मानापमान भावस्थान, हर्षा-हर्ष भाव स्थान, प्रकृति-स्थिति-प्रदेश-अनुभाग-उदयस्थान, क्षय-क्षयोपशम, उपशम-उदय भाव स्थान, भव भ्रमण, जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, कुल, योनि, जीव स्थान, मार्गणा स्थान, दण्ड, द्वन्द्व, ममत्त्व, शरीर, आलम्बन, राग, द्वेष, मूढता, भय, परिग्रह, शल्य, दोष, काय, क्रोध, मान, मद, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, लिंग, सस्थान, सहनन, आकार—ये सब नही है।

गाथा-१०-११ सभी जीव शुद्ध हैं

द्रव्यार्थिक नय से मुक्त और संसारी जीव समान हैं। सिद्धो के समान ससारी जीव भी अशरीरी, अविनाशी, अतीन्द्रिय ज्ञान सम्पन्न, निर्मल और विशुद्धात्मा है।

गाथा-१२-१३ हेयोपादेय दृष्टि

पूर्वोक्त समस्त भाव व्यवहार नय से कहे जाते है, किन्तु वे परद्रव्य और परभाव है, अत हेय है, केवल अन्तस्तत्त्व आत्मा ही उपादेय है।

गाथा-१४-१८ रत्नत्रय का स्वरूप

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र से मोक्ष होता है। विपरीत अभिनिवेश अथवा चल, मलिन, अगाढ रहित श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। सशय, विमोह, विभ्रम रहित ज्ञान अथवा तत्त्वो का अधिगम भाव सम्यग्ज्ञान है। पाप-क्रिया से निवृत्ति रूप परिणाम सम्यक् चारित्र है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में जिनेन्द्र कथित सूत्र और उसके जानने वाले पुरुष बाह्य निमित्त हैं तथा दर्शन मोहनीय का क्षय, उपशम अथवा क्षयोपशम अन्तरंग कारण है।

चउत्थो ववहार चारित्ताधियारो ४-२१-७६ ४६-६६

गाथा-१-५ पंच महाव्रत का स्वरूप

जीवों के आरम्भ से निवृत्ति रूप परिणाम अहिंसा व्रत है। राग, द्वेष मोह से होने वाले असत्य भाषण के परिणाम का त्याग सत्यव्रत है। पराई वस्तु के ग्रहण के भाव का त्याग अचौर्यव्रत है। स्त्रियों की वांछा रूप परिणाम अथवा मैथुन परिणामों का त्याग ब्रह्मचर्य व्रत है। निरपेक्ष भावना से समस्त बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह का त्याग अपरिग्रह व्रत है।

गाथा-६-१० पाँच समितियों का स्वरूप

प्रासुक मार्ग से दिन में युग प्रमाण आगे देखकर चलना ईर्या समिति है। पैशुन्य, हास्य कर्कश, परनिन्दा और आत्म प्रशंसा रूप वचन छोड़कर स्व-पर हितकारी वचन बोलना भाषा समिति है। कृत, कारित, अनुमोदना रहित, प्रासुक, शास्त्र मे प्रशसित और श्रावक द्वारा भक्तिपूर्वक दिया आहार ग्रहण करना एषणा समिति है। पुस्तक, कमण्डल आदि के उठाने धरने में यत्नाचार के परिणाम आदान निक्षेपण समिति है। एकान्त, प्रासुक, और अन्य द्वारा रोका न जाय, ऐसे स्थान पर मलमूत्रादि का क्षेपण करना प्रतिष्ठापना समिति है।

गाथा-११-१५ तीन गुप्तियों का स्वरूप

कालुष्य, मोह, संज्ञा, राग-द्वेषादि भावो का त्याग व्यवहार मनोगुप्ति है।

पाप की कारणभूत स्त्री कथा, राजकथा, चोर कथा और भक्तकथा का त्याग अथवा असत्य की निवृत्ति रूप वचन बोलना व्यवहार वचन-गुप्ति है।

बंधन, छेदन, मारण, आकुंचन तथा प्रसारण आदि काय-क्रियाओं की निवृत्ति व्यवहार कायगुप्ति है।

मन से रागादि की निवृत्ति निश्चय मनोगुप्ति है। असत्य आदि की निवृत्ति अथवा मौन निश्चय वचनगुप्ति है। काय-

क्रियाओं की निवृत्ति रूप कायोत्सर्ग अथवा हिंसादि की निवृत्ति निश्चय कायगुप्ति है।

गाथा १६-२० पंचपरमेष्ठी का स्वरूप

घाति कर्मों से रहित, अनन्त चतुष्टय से युक्त और चोंतीस अतिशय से सयुक्त अरहन्त परमेष्ठी होते है। अष्ट कर्मों से रहित, अष्ट गुणो से सयुक्त और लोकाग्र मे स्थित सिद्ध परमेष्ठी होते है। पचाचार से युक्त, पचेन्द्रिय जयी और धीर, गभीर आचार्य परमेष्ठी होते है। रत्नत्रय से सयुक्त, जिनेन्द्र कथित पदार्थों का उपदेश करने वाले शूर और आकांक्षा रहित उपाध्याय परमेष्ठी होते है। समस्त व्यापार से विप्रमुक्त, चार आराधनाओ मे अनुरक्त, निर्ग्रंथ और निर्मोह साधु परमेष्ठी होते।

गाथा-२१ उपसंहार

उपर्युक्त सम्पूर्ण कथन व्यवहार नय की मुख्यता से किया गया है।

पंचमो परमत्थ पडिक्कमणाधियारो ५-१८-६४ ६७-८१

गाथा-१-६ भेदाभ्यास से निश्चय चारित्र होता है

'मै मनुष्य, नारकी, तिर्यञ्च और देव नही हूँ, मै मार्गणा स्थान, गुणस्थान और जीवस्थान नहो हूँ, मै बाल, वृद्ध, तरुण और उसका कारण नही हूँ, मै राग, द्वेष, मोह और उनका कारण नही हूँ, मै क्रोध, मान, माया और लोभ नही हूँ।

मैं इन सबका न कर्ता हूँ, न कारयिता हूँ और न अनुमन्ता हूँ। ऐसा भेदाभ्यास होने पर जीव इनके प्रति मध्यस्थ हो जाता है। उससे निश्चय चारित्र होता है।

गाथा-७-१० निश्चय प्रतिक्रमण

रागादि भाव रहित आत्म-ध्यान, आराधना मे वर्तन, आचार मे स्थिरता और जिन-मार्ग मे स्थिर भाव निश्चय प्रतिक्रमण है।

गाथा-११-१७ साधु ही प्रतिक्रमण है

निःशल्य भाव में परिणमन करने वाला, त्रिगुप्ति मे स्थिर, धर्म और शुक्ल ध्यान में आरूढ़, रत्नत्रय की भावना करने वाला, आत्मध्यान मे लीन साधु प्रतिक्रमणस्वरूप है, क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय है।

गाथा-१८ व्यवहार प्रतिक्रमण

भगवान जिनेन्द्र ने प्रतिक्रमण सूत्र मे प्रतिक्रमण का जैसा स्वरूप बताया है, उसको जानकर, उसकी जो भावना करता है, उसको प्रतिक्रमण होता है।

छट्ठो परमत्थ पच्चक्खाणाधियारो ६-१२-१०६ ८२-९३

गाथा-१ निश्चय प्रत्याख्यान का स्वरूप

वचन-व्यापार और शुभाशुभ भावो का त्याग करके शुद्धात्म स्वरूप का ध्यान करना निश्चय प्रत्याख्यान है।

गाथा-२-१० आत्म-ध्यान में ज्ञानी का चिन्तन

"मैं केवल ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यस्वरूप हूं, परभाव मेरे नही है, मै उनका ज्ञाता-दृष्टा मात्र हू, मेरी आत्मा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्ध से रहित है, आत्मा ही मेरा आलम्बन है, मेरे ज्ञान-दर्शन-चारित्र-प्रत्याख्यान-सवर और योग मे मै हू, जीव अकेला ही जीवन-मरण करता है और वह अकेला ही कर्म-रज से रहित होकर सिद्ध होता है, मैं एक, शास्वत और ज्ञान-दर्शन लक्षण वाला हू, शेष सब भाव सयोगी है और मुझसे पृथक् हैं, मैं समस्त दुश्चा-रित्र को मन-वचन-काय से छोडकर त्रिविध चारित्र को धारण करता हू, सम्पूर्ण जीवो के प्रति मेरा समता भाव है, किसी के प्रति मेरा बैर नहीं है, मैं समस्त इच्छाओं का त्याग करके समाधि ग्रहण करता हू"—ज्ञानी आत्म-ध्यान में इस प्रकार चिन्तन करता है।

गाथा-११-१२ प्रत्याख्यान का अधिकारी

कषाय रहित, इन्द्रियजयी, परीषह और उपसर्गों को जीतने में शूरवीर, तप में उद्यमी, संसार से भयभीत, जीव और

कर्मों का भेदाभ्यास करने वाला ही निश्चय प्रत्याख्यान कर सकता है.

गाथा—१-६ निश्चय आलोचना का स्वरूप और उसके लक्षण नोकर्म, कर्म और विभाव गुण, पर्यायों से भिन्न आत्मा का ध्यान करना निश्चय आलोचना कहलाती है। आलोचन, आलुँछन, अविकृतिकरण और भावशुद्धि ये चार उसके लक्षण हैं। परिणामो को समता भाव में स्थापित करके आत्म-दर्शन करना आलोचन है। समताभाव रूप स्वाधीन निज आत्म-परिणाम आलुंछन है। माध्यस्थ भाव द्वारा अनन्त गुणों की निधान आत्मा की भावना करना अविकृतिकरण है। काम, मान, माया, लोभ रहित निर्मल भाव भावशुद्धि है।

गाथा-१-७ निश्चय प्रायश्चित्त का स्वरूप

व्रत, समिति, शील और संयम रूप परिणाम, इन्द्रिय-निग्रह, क्रोधादि विभावो के क्षय की भावना, निजात्म गुणों का चिन्तन, कषाय-विजय, आत्मज्ञान, उत्तम तप और ध्यान निश्चय प्रायश्चित है।

गाथा-८ निश्चय नियम का स्वरूप

वचन-रचना और रागादि भावो का त्याग करके आत्म-ध्यान करना निश्चय नियम है।

गाथा-९ कायोत्सर्ग का स्वरूप

शरीरादि परद्रव्यों मे स्थिर भाव का त्याग करके आत्म-स्वरूप का निर्विकल्प ध्यान करना निश्चय कायोत्सर्ग कहलाता है।

गाथा-१-२ परम समाधि का स्वरूप

वीतराग भाव, संयम-नियम-तप-धर्मध्यान और शुक्ल-ध्यान पूर्वक आत्मा का ध्यान करना परम समाधि है।

गाथा-३ समता भाव

समता भाव के विना कायक्लेश, उपवास, अध्ययन एवं मौन से कोई लाभ नही।

गाथा ४-१२ स्थायी सामायिक

सावद्य से विरत, त्रिगुप्ति से युक्त, जितेन्द्रिय, समस्त जीवो के प्रति समता रखने वाले, सयम-नियम-तप में निरत, वीतराग, आर्त-रौद्र ध्यान के त्यागी, शुभाशुभ भावों के परित्यागी, नो कषाय को छोडने वाले और धर्म-शुक्ल-ध्यान मे निरत रहने वाले श्रमण के सामायिक स्थायी होती है।

दसमो परमभत्ति अधियारो १०-७-१४० १२१-१२७

गाथा-१-३ निर्वाण भक्ति का स्वरूप

रत्नत्रय की भक्ति निश्चय निर्वाण-भक्ति है और सिद्धों के गुण-भेद जानकर उनकी भक्ति करना व्यवहार निर्वाण-भक्ति है।

गाथा-४-७ निश्चय योग भक्ति का स्वरूप

आत्मा को रागादि विकल्पो और विपरीत अभिनिवेश के परिहार मे लगाने से परम योग भक्ति होती है। इसी से जिनेन्द्रो ने निर्वाण प्राप्त किया।

ऐक्कारसमो परमावस्सयाधियारो ११-१८-१५८ १२८-१४५

गाथा-१-२ आवश्यक शब्द की निरुक्ति

जो अन्य के वश नही है, वह अवश है। अवश का कर्म आवश्यक है। इसी से निर्वाण प्राप्त होता है।

गाथा ३-८ आवश्यक का अधिकारी

अशुभ भाव, शुभ भाव, द्रव्य-गुण पर्यायों में मन न लगाने वाले, परभाव को छोड़कर निर्मल आत्म स्वरूप का ध्यान करने वाले श्रमण के आवश्यक होता है। आवश्यक से हीन श्रमण चारित्र से भ्रष्ट है।

गाथा-९-११ आवश्यक से युक्त श्रमण अन्तरात्मा है

आवश्यक से युक्त, अन्तः-बाह्य जल्पो का त्यागी, धर्म और शुक्ल ध्यान में परिणत श्रमण अन्तरात्मा है। जो ऐसा नही है, वह बहिरात्मा है।

गाथा-१२-१४ प्रतिक्रमण की उपादेयता

प्रतिक्रमणादि क्रियाओं से वीतराग चारित्र प्राप्त होता है। प्रतिक्रमणादिक वचन-व्यापार स्वाध्याय है। ध्यानयुक्त प्रतिक्रमण उपादेय है।

गाथा १५-१८ ज्ञानी को उपदेश

ज्ञानी को निजसूत्र से प्रतिक्रमणादि की परीक्षा करके मौनपूर्वक कर्तव्य कर्म करना चाहिये, परस्पर विवाद नही करना चाहिये, पर—चिंता छोडकर अपनी ज्ञाननिधि को भोग करना चाहिये। आवश्यक कर्म द्वारा ही केवली बनते है।

बारसमो सुद्धोवओगाधियारो १२-२९-१८७ १४६-१७४

गाथा-१-१३ केवल ज्ञानी स्व-पर सबको जानते-देखते हैं

व्यवहार नय से केवली सबको जानते, देखते हैं और निश्चय नय से अपनी आत्मा को जानते, देखते हैं। सूर्य के प्रकाश और ताप के समान केवली के ज्ञान और दर्शन युगपत् होते है। यदि ज्ञान को पर प्रकाशक और दर्शन को स्वप्रकाशक माना जाय और इस प्रकार आत्मा को स्व-पर प्रकाशक माना जाय, तब तो ज्ञान और दर्शन भिन्न भिन्न मानने होंगे। वस्तुतः ज्ञान, दर्शन और आत्मा अभिन्न है। अतः यह कहा जा सकता है कि ज्ञान परप्रकाशक है तो दर्शन पर प्रकाशक है, दर्शन स्व प्रकाशक है तो ज्ञान स्वप्रकाशक है। अतः केवल ज्ञान समस्त चेतन-अचेतन द्रव्यो और स्व को जानता है। केवल ज्ञान अतीन्द्रिय और प्रत्यक्ष ज्ञान है, जबकि इन्द्रिय ज्ञान परोक्ष ज्ञान है। इसी

प्रकार केवल दर्शन भी प्रत्यक्ष दर्शन है, जबकि इन्द्रिय-दर्शन परोक्ष दर्शन है।

गाथा--१४-१७ केवली की समस्त क्रिया ईहारहित होती है

केवली का ज्ञान और दर्शन, वचन, खड़े रहना, बैठना, विहार करना समस्त क्रियायें ईहा और परिणामपूर्वक नहीं होतीं। इसलिये उन्हे कर्म-बन्ध नही होता।

गाथा-१८ जीव की स्वभाव गति

केवली सम्पूर्ण कर्मों का नाश होने पर एक समय मात्र में लोक के अग्र भाग मे पहुंच जाते हैं। (वे ही परमात्मा कहलाते हैं)।

गाथा-१९-२० परमात्मा का स्वरूप

परमात्मा जन्म, जरा, मरण, अष्टकर्म से रहित, ज्ञानादि स्वभाव वाले, शुद्ध, अविनाशी, अछेद्य, अव्यावाध, अतीन्द्रिय, अनुपम, पुण्य पाप से रहित, पुनरागमन से रहित, नित्य, अचल और निरालम्ब है।

गाथा-२१-२३ निर्वाण का स्वरूप

निर्वाण मे दुःख, सुख, पीडा, बाधा, जन्म, मरण, इन्द्रिय, उपसर्ग, मोह, विस्मय, निद्रा, क्षुधा, तृषा, कर्म, नोकर्म, चिन्ता, ध्यान आदि नही हैं।

गाथा-२४ सिद्ध भगवान के गुण

सिद्ध भगवान के केवल ज्ञान, केवल दर्शन, केवल सुख, केवल वीर्य, अमूर्तत्व, अस्तित्व, सप्रदेशत्व आदि स्वभाव गुण होते हैं।

गाथा-२५-२६ लोकाग्र से आगे न जाने का कारण

कर्म नष्ट होने पर जीव लोक के अग्रभाग पर्यन्त जाता

है उससे आगे नही जाता, क्योंकि आगे धर्मास्तिकाय का अभाव है ।

गाथा-२७-२६ आचार्य का आत्म-निवेदन

मैंने प्रवचन-भक्ति और निजात्म भावना से नियमसार ग्रन्थ की रचना की है । यदि इसमे कही पूर्वापर विरोध हो तो शास्त्र के ज्ञाता पुरुष उसे दूर करके शुद्ध कर लें । ईर्ष्यालु पुरुष के निन्दा-वचन सुनकर जिन मार्ग के प्रति अभक्ति नही करनी चाहिये ।

ॐ

सिरि कोंडकुडाइरिय पणीदो

णियमसारो

जीवाधियारो

अह मंगलायरणं—

गाहा— **णमिदूण जिण वीरं, अणंतवरणाणदंसणसहावं।**
वोच्छामि णियमसारं, केवलि-सुदकेवलीभणिदं ॥१-१-१॥

अन्वयार्थ— (**अणंतवरणाणदंसणसहावं**) अनन्त और श्रेष्ठ ज्ञान, दर्शन स्वभाव वाले (**वीरं जिण**) वीर जिनको (**णमिदूण**) नमस्कार करके (**केवलिसुदकेवलीभणिदं**) केवलियो और श्रुतकेवलियो द्वारा कथित (**णियमसारं**) नियमसार नामक ग्रन्थ (**वोच्छामि**) कहता हूँ।

अर्थ— (मै) अनन्त और श्रेष्ठ ज्ञान, दर्शन स्वभाव वाले वीर जिन को नमस्कार करके केवलियो और श्रुतकेवलियो द्वारा कथित नियमसार नामक ग्रन्थ कहता हूँ।

मोक्ष-मार्ग और उसका फल

गाहा—मग्गो मग्गफलं तिय, दुविहं जिणसासणे समक्खादं ।
मग्गो मोक्खउवायो, तस्स फलं होदि णिव्वाणं ॥१-२-२॥

अन्वयार्थ—(**जिणसासणे**) जिन शासन में (**मग्गो**) मार्ग (**य**) और (**मग्गफलं**) मार्ग का फल (**ति**) इस प्रकार (**दुविहं**) दो प्रकार—दो भेद (**समक्खादं**) कहे गये है—उनमे (**मग्गो**) मार्ग तो (**मोक्खउवायो**) मोक्ष का उपाय है—और (**णिव्वाणं**) निर्वाण (**तस्स फलं**) उसका फल (**होदि**) है।

अर्थ—जिन शासन मे मार्ग और मार्ग का फल—इस प्रकार दो भेद कहे गये है। (उनमें) मोक्ष का उपाय तो मार्ग है और निर्वाण उसका फल है।

नियम के साथ सार शब्द की सार्थकता

गाहा– **णियमेण य जं कज्जं, तण्णियमं णाणदंसणचरित्तं ।**
विवरीदपरिहरत्थं, भणिदं खलु सारमिदि वयणं ॥ १-३-३ ॥

अन्वयार्थ – (**णियमेण य**) नियम से (**जं**) जो (**कज्जं**) करने योग्य है (**तण्णियमं**) वह नियम है – वह नियम (**णाणदंसणचरित्तं**) ज्ञान, दर्शन, चारित्र है (**विवरीदपरिहरत्थं**) उनसे विपरीत भावो का परिहार करने के लिए (**खलु**) ही (**सारं**) सार (**इदि वयणं**) यह वचन (**भणिदं**) कहा गया है।

अर्थ– नियम से जो करने योग्य है, वह नियम है (कहलाता है) (वह नियम) ज्ञान, दर्शन, चारित्र है। उनसे विपरीत भावो का परिहार करने के लिए ही सार यह वचन कहा गया है।

गाहा— णियमं मोॅक्खउवायो, तस्स फलं हवदि परमणिव्वाणं।
एदेसिं तिण्हं पि य, पत्तेयपरूवणा होदि १ ॥१-४-४॥

अन्वयार्थ—(**मोॅक्खउवायो**) मोक्ष का उपाय (**णियमं**) नियम है (**तस्स**) उसका (**फलं**) फल (**परमणिव्वाणं**) परम निर्वाण (**हवदि**) है (**य**) और (**एदेसिं**) इन (**तिण्हं पि**) तीनो की (**पत्तेय-परूवणा**) पृथक्-पृथक् प्ररूपणा (**होदि**) होती है।

अर्थ—मोक्ष का उपाय नियम है। उसका फल परम निर्वाण है और इन तीनो की (ज्ञान, दर्शन, चारित्र की) पृथक्-पृथक् प्ररूपणा होती है (जो आगे की जायेगी)।

— पत्तेय—हर एक, एक एक, पृथक्-पृथक्—पा० स० म०, पृ० ५३४

**गाहा--अत्तागमतच्चाणं, सद्दहणादो हवेदि सम्मत्तं। ६
वबगदअसेसदोसो, सयलगुणप्पा हवे अत्तो ॥१-५-५॥**

अन्वयार्थ—(**अत्तागमतच्चाणं**) आप्त, आगम और तत्त्वों के (**सद्दहणादो**) श्रद्धान से (**सम्मत्तं**) सम्यक्त्व (**हवेदि**) होता है (**ववगदअसेसदोसो**) सम्पूर्ण दोषों से रहित (**सयलगुणप्पा**) समस्त गुणों से युक्त आत्मा-पुरुष (**अत्तो**) आप्त (**हवे**) होता है।

अर्थ—आप्त, आगम और तत्त्वों के श्रद्धान से सम्यक्त्व (व्यवहार सम्यग्दर्शन) होता है। सम्पूर्ण दोषों से रहित और समस्त गुणों से युक्त आत्मा (पुरुष) आप्त होता है (कहलाता है)।

गाहा—छुह-तण्ह-भीरु-रोसो, रागो मोहो चिंता जरा रुजा मिच्चू ।
सेदं खेद मदो रदि, विम्हय णिद्दा जणुव्वेगो ॥
॥१-६-६॥

णिस्सेस दोसरहिदो, केवलणाणादि परमविभवजुदो ।
सो परमप्पा वुच्चदि, तव्विवरीदो ण परमप्पा ॥१-७-७॥

अन्वयार्थ—(**छुह-तण्ह-भीरु-रोसो**) क्षुधा, तृषा, भय, रोष, (**रागो**) राग (**मोहो**) मोह (**चिंता**) चिंता (**जरा**) जरा (**रुजा**) रोग (**मिच्चू**) मृत्यु (**सेदं**) स्वेद (**खेद**) खेद (**मदो**) मद (**रदि**) रति (**विम्हय**) विस्मय (**णिद्दा**) निद्रा (**जणुव्वेगो**) जन्म और उद्वेग (**णिस्सेसदोसरहिदो**) इन समस्त अठारह दोषो से रहित है और (**केवलणाणादिपरमविभवजुदो**) केवलज्ञानादि परमवैभव से युक्त है (**सो**) वह-पुरुष (**परमप्पा**) परमात्मा (**वुच्चदि**) कहलाता है (**तव्विवरीदो**) इससे विपरीत (**परमप्पा**) परमात्मा (**ण**) नहीं होता।

अर्थ—क्षुधा, तृषा, भय, रोष, राग, मोह, चिंता, जरा, रोग, मृत्यु, स्वेद, खेद, मद, रति, विस्मय, निद्रा, जन्म और उद्वेग - जो इन समस्त अठारह दोषो से रहित है और केवलज्ञानादि परम वैभव से युक्त है, वह पुरुष परमात्मा कहलाता है। इससे विपरीत परमात्मा नही होता।

उग्गाहा -- तस्स मुहग्गदवयणं, पुव्वावरदोसविरहिदं सुद्धं ।
यं आगममिदि परिकहिदं, तेण दु कहिदा हवंति तच्चत्था ॥
॥१-८-८॥

अन्वयार्थ—(**तस्स**) उसके—अठारह दोष रहति परमात्मा के (**मुहग्गदवयणं**) मुख से निकले हुए वचन—जो (**पुव्वावरदोसविरहिदं**) पूर्वा पर दोष से—विरोध से रहित है और (**सुद्धं**) शुद्ध है (**आगम-मिदि**) उसे आगम (**परिकहिदं**) कहा गया है (**तेण दु**) उस आगम के द्वारा (**तच्चत्था**) तत्त्वार्थ (**कहिदा हवंति**) कहे गये है ।

अर्थ - उसके (अठारह दोष रहित परमात्मा के) मुख से निकले हुए वचन, जो पूर्वापर दोष से (विरोध से) रहित है और शुद्ध है, उसे आगम कहा गया है । उस आगम के द्वारा तत्त्वार्थ कहे गये है ।

उग्गाहा—जीवा पोंग्गलकाया, धम्माधम्मा य काल आयासं।
तच्चत्था इदि भणिदा, णाणागुणपज्जयेहिं संजुत्ता॥
॥१-६-६॥

अन्वयार्थ—(**जीवा**) जीव (**पोंग्गलकाया**) पुद्गलकाय (**धम्मा-धम्मा**) धर्म, अधर्म (**काल**) काल (**य**) और (**आयासं**) आकाश (**इदि**) ये (**तच्चत्था**) तत्त्वार्थ (**भणिदा**) कहे गये है—ये (**णाणा-गुणपज्जयेहि**) विविध गुण और पर्यायो से (**संजुत्ता**) सयुक्त है।

अर्थ—जीव, पुद्गलकाय, धर्म, अधर्म, काल और आकाश ये तत्त्वार्थ कहे गये है। ये विविध गुण और पर्यायो से सयुक्त है।

उपयोग का लक्षण और भेद

उग्गाहा—जीवो उवओगमओ, उवओगो णाणदंसणो होदि ।
णाणुवओगो दुविहो, सहावणाणं विहावणाणं ति ।। ६

।।१-१०-१०।।

अन्वयार्थ—(**जीवो**) जीव (**उवओगमओ**) उपयोगमय है (**उवओगो**) उपयोग (**णाणदंसणो**) ज्ञान और दर्शन (**होदि**) है (**णाणुवओगो**) ज्ञानोपयोग (**सहावणाणं**) स्वभाव ज्ञान और (**विहावणाणं**) विभावज्ञान (**त्ति**) इस प्रकार (**दुविहो**) दो प्रकार का है ।

अर्थ—जीव उपयोगमय है । ज्ञान और दर्शन उपयोग है । ज्ञानोपयोग स्वभावज्ञान और विभाव ज्ञान इस प्रकार दो प्रकार का है ।

गाहा—केवलमिंदियरहिदं, असहायं तं सहावणाणंति ।
सण्णाणिदरवियप्पे, विहावणाणं हवे दुविहं ॥१-११-११॥

सण्णाणं चउभेयं, मदिसुदओही तहेव मणपज्जं ।
अण्णाणं तिवियप्पं, मदियादी भेददो चेव ॥१-१२-१२॥

अन्वयार्थ—(**केवलं**) केवल ज्ञान (**इंदियरहिदं**) इन्द्रियरहित अतीन्द्रिय है (**असहायं**) असहाय है किसी की सहायता की अपेक्षा से रहित है (**तं**) उसे (**सहावणाणं**) स्वभाव ज्ञान (**ति**) ऐसा जानो (**सण्णाणिदरवियप्पे**) उसके सम्यग्ज्ञान और मिथ्या ज्ञान ऐसे भेद करने पर (**विहावणाणं**) विभाव ज्ञान (**दुविहं**) दो प्रकार का (**हवे**) है।

(**सण्णाणं**) सम्यग्ज्ञान (**चउभेय**) चार प्रकार का है (**मदिसुद ओही**) मति, श्रुत, अवधि (**तहेव**) तथा (**मणपज्जं**) मन पर्यय (**चेव**) और (**अण्णाण**) अज्ञान-विभावज्ञान (**मदियादी भेददो**) मति आदि के भेद से (**तिवियप्प**) तीन प्रकार का है।

अर्थ—केवल ज्ञान इन्द्रिय रहित (अतीन्द्रिय) है, असहाय है (किसी की सहायता की अपेक्षा से रहित है), उसे स्वभाव ज्ञान ऐसा जानो। उसके सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान ऐसे भेद करने पर विभाव ज्ञान (मिथ्याज्ञान और सम्यग्ज्ञान इस प्रकार) दो प्रकार का है। सम्यग्ज्ञान चार प्रकार का है—मति, श्रुत, अवधि तथा मन पर्यय। और अज्ञान (मिथ्याज्ञान) मति आदि के भेद से तीन प्रकार का है।

उग्गाहा— तह दंसणउवओगो, ससहावेदर वियप्पदो दुविहो ।
केवलमिंदियरहिदं, असहायं तं सहावमिदि भणिदं ।।
।।१-१३-१३।।

अन्वयार्थ — **(तह)** उसी प्रकार **(दंसणउवओगो)** दर्शनोपयोग **(ससहावेदर वियप्पदो)** स्वभाव और विभाव के भेद से **(दुविहो)** दो प्रकार का है **(केवलं)** केवलदर्शनोपयोग **(इंदिय रहिदं)** इन्द्रिय रहित (अतीन्द्रिय) है **(असहाय)** असहाय है—किसी की सहायता की अपेक्षा से रहित है **(तं)** उसे **(सहावं)** स्वभाव दर्शनोपयोग **(इदि)** ऐसा **(भणिदं)** कहा है ।

अर्थ— उसी प्रकार दर्शनोपयोग स्वभाव और विभाव के भेद से दो प्रकार का है । केवल दर्शनोपयोग इन्द्रिय रहित (अतीन्द्रिय) है, असहाय है (किसी की सहायता की अपेक्षा से रहित है), उसे स्वभाव दर्शनोपयोग कहा है ।

गाहा—**चक्खु अचक्खु ओही, तिण्णिवि भणिदं विभावदिच्छित्ति।**
पज्जाओ दुविअप्पो, सपरावेक्खो य णिरवेक्खो ॥
॥१-१४-१४॥

अन्वयार्थ—(**चक्खु**) चक्षु (**अचक्खू**) अचक्षु (**ओही**) अवधि (**तिण्णि वि**) तीनो ही (**विभावदिच्छित्ति**) विभाव दर्शन (**भणिदं**) कहे गये है (**पज्जाओ**) पर्याय (**दुवियप्पो**) दो प्रकार के है (**सपरावेक्खो**) स्व-परापेक्ष (**य**) और (**णिरवेक्खो**) निरपेक्ष।

अर्थ—चक्षु, अचक्षु और अवधि ये तीनो ही विभावदर्शन कहे गये है। पर्याय दो प्रकार के है—स्वपरापेक्ष और निरपेक्ष।

उग्गाहा—**णर-णारय-तिरिय-सुरा, पज्जाया ते विभावमिदि भणिदा ।**

कम्मोपाधिविवज्जिद पज्जाया ते सहावमिदि भणिदा ॥
॥१-१५-१५॥

अन्वयार्थ—(**णर-णारय-तिरिय-सुरा**) मनुष्य, नारक, तिर्यञ्च और देव (**पज्जाया**) पर्याय (**ते**) वे (**विभावं**) विभाव पर्याय हैं (**इदि**) ऐसा (**भणिदा**) कहा गया है—जो (**कम्मोपाधिविवज्जिद-पज्जाया**) कर्मोपाधि से रहित पर्याय है (**ते**) वे (**सहावं**) स्वभाव पर्याय है (**इदि**) इस प्रकार (**भणिदा**) कहा गया है ।

अर्थ—मनुष्य, नारक, तिर्यञ्च और देव पर्याय है, वे विभाव पर्याय कही गई हैं । जो कर्मोपाधि से रहित पर्याय है, वे स्वभाव पर्याय कही गई हैं ।

गाहा—माणुस्सा दुवियप्पा, कम्ममही-भोगभूमि संजादा ।
सत्तविहा णेरइया, णादव्वा पुढविभेदेण ॥
॥१-१६-१६॥

चउदहभेदा भणिदा, तेरिच्छा सुरगणा चउब्भेदा ।
एदेसि वित्थारं, लोकविभागेसु णादव्वं ॥
॥१-१७-१७॥

अन्वयार्थ-- (**माणुस्सा**) मनुष्य (**दुवियप्पा**) दो प्रकार के होते है (**कम्ममही-भोगभूमिसंजादा**) कर्म भूमिज और भोग भूमिज (**पुढविभेदेण**) पृथ्वी के भेद से (**णेरइया**) नारकी (**सत्तविहा**) सात प्रकार के (**णादव्वा**) जानने चाहिये (**तेरिच्छा**) तिर्यञ्च (**चउदह-भेदा**) चौदह प्रकार के (**भणिदा**) कहे गये है (**सुरगणा**) देव समूह (**चउब्भेदा**) चार प्रकार के है (**एदेसि**) इनका (**वित्थार**) विस्तार (**लोकविभागेसु**) लोक विभाग नामक परमागम मे (**णादव्व**) जान लेना चाहिए ।

अर्थ—मनुष्य दो प्रकार के होते है—कर्म भूमिज और भोग-भूमिज । पृथ्वी के भेद से नारकी सात प्रकार के जानने चाहिए । तिर्यञ्च चौदह प्रकार के कहे गये है । देव समूह चार प्रकार के है । इनका विस्तार लोक विभाग परमागम मे मे जान लेना चाहिये ।

गाहा—कत्ता भोत्ता आदा, पोंग्गलकम्मस्स होदि ववहारो।
कम्मजभावेणादा, कत्ता भोत्ता दु णिच्छयदो॥

॥१-१८-१८॥

अन्वयार्थ—(**आदा**) आत्मा (**पोंग्गलकम्मस्स**) पुद्गल कर्मों का (**कत्ता भोत्ता**) कर्त्ता और भोक्ता (**होदि**) है (**ववहारो**) यह व्यवहार नय से है (**णिच्छयदो दु**) निश्चय– अशुद्ध निश्चय नय से तो (**आदा**) आत्मा (**कम्मजभावेण**) कर्मजनित भावों का (**कत्ता भोत्ता**) कर्त्ता भोक्ता है।

अर्थ—आत्मा पुद्गल कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता है—यह व्यवहार नय से है। निश्चय नय (अशुद्ध निश्चय नय) से तो आत्मा कर्मजनित भावो का कर्त्ता-भोक्ता है।

व्यवहार और निश्चय नय से पर्यायों का कथन

गाहा—दव्वत्थिएण जीवा, वदिरित्ता पुव्वभणिदपज्जाया ।
पज्जयणयेण जीवा, संजुत्ता होंति दुविहेहिं ॥
॥१-१६-१६॥

अन्वयार्थ— (**जीवा**) जीव (**दव्वत्थिएण**) द्रव्यार्थिक नय से (**पुव्वभणिदपज्जाया**) पूर्वोक्त पर्यायों से (**वदिरित्ता**) भिन्न है (**पज्जयणयेण**) पर्यायार्थिक नय से (**जीवा**) जीव (**संजुत्ता**) उनसे सयुक्त (**होंति**) है (**दुविहेहिं**) इस प्रकार दोनों नयो से जानना ।

अर्थ—जीव द्रव्यार्थिक नय से पूर्वोक्त पर्यायों से भिन्न है। पर्यायार्थिक नय से जीव उनसे सयुक्त है। इस प्रकार दोनों नयो से जानना ।

इदि जीवाधियारो पढमोसुदखंधोसमत्तो

पुद्गल द्रव्य के भेद

गाहा—**अणुखंधवियप्पेण दु, पोग्गलदव्वं हवेदि दुवियप्पं।**
खंधा हु छप्पयारा, परमाणू चेव दुवियप्पो ॥२-१-२०॥

अन्वयार्थ—(**अणुखंधवियप्पेण दु**) अणु और स्कध के भेद से (**पोग्गलदव्वं**) पुद्गल द्रव्य (**दुवियप्पं**) दो प्रकार का (**हवेदि**) होता है (**खंधा**) स्कन्ध (**हु**) वास्तव मे (**छप्पयारा**) छह प्रकार के है (**चेव**) और (**परमाणू**) परमाणु (**दुवियप्पो**) दो प्रकार के है।

अर्थ—अणु और स्कन्ध के भेद से पुद्गल द्रव्य दो प्रकार का होता है। स्कन्ध वास्तव मे छह प्रकार के है और परमाणु दो प्रकार के है।

गाहा अदिथूलथूलथूलं, थूलसुहुमं सुहुमथूलं च ।
सुहुमं अदिसुहुमं इदि, धरादियं होदि छब्भेदं ॥२-२-२१॥

गाहा भूपव्वदमादीया, भणिदा अदिथूलथूलमिदि खंधा ।
थूला इदि विण्णेया, सप्पी-जल-तेलमादीया ॥२-३-२२॥

गाहा - छायातवमादीया, थूलेदर खंधमिदि वियाणाहि ।
सुहुमथूलेदि भणिदा, खंधा चउरक्खविसया य ॥२-४-२३॥

गाहा —सुहुमा हवंति खंधा, पाओग्गा कम्मवग्गणस्स पुणो ।
तव्विवरीदा खंधा, अदिसुहुमा इदि परूवेंति ॥२-५-२४॥

अन्वयार्थ - (**अदिथूलथूल**) अति स्थूल स्थूल (**थूलं**) स्थूल (**थूलसुहुमं**) स्थूल सूक्ष्म (**च**) और (**सुहुमथूलं**) सूक्ष्म स्थूल (**सुहुमं**) सूक्ष्म (**अदिसुहुमं**) अति सूक्ष्म (**इदि**) इस प्रकार (**धरादियं**) पृथ्वी आदि स्कन्धो के (**छब्भेदं**) छह भेद (**होदि**) होते है ।

(**भूपव्वदमादीया**) पृथ्वी, पर्वत आदि (**अदिथूलथूल**) अति स्थूलस्थूल (**खंधा**) स्कन्ध (**भणिदा**) कहे गये है (**सप्पी-जल तेल मादीया**) घी, जल, तेल आदि (**थूला**) स्थूल स्कन्ध है (**इदि**) यह (**विण्णेया**) जानना चाहिए ।

(**छायातवमादीया**) छाया, धूप, आदि (**थूलेदरखंधं**) स्थूल सूक्ष्म स्कन्ध है (**इदि**) ऐसा (**वियाणाहि**) जानो (**य**) और (**चउ-रक्ख विसया खधा**) चार इन्द्रियो के विषयभूत स्कन्ध (**सुहुमथूल**) सूक्ष्म स्थूल है (**इदि**) यह (**भणिदा**) कहा गया है ।

(**पुणो**) पुन (**कम्मवग्गणस्स पाओग्गा खधा**) कर्मवर्गणा के योग्य स्कन्ध (**सुहुमा**) सूक्ष्म (**हवंति**) होते है (**तव्विवरीदा खंधा**) उनके विपरीत कर्मवर्गणा के अयोग्य स्कन्ध (**अदिसुहुमा**) अति सूक्ष्म होते है (**इदि**) ऐसा (**परूवेंति**) कहते है ।

अर्थ—अति स्थूलस्थूल, स्थूल, स्थूलसूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल, सूक्ष्म और अति सूक्ष्म—इस प्रकार पृथ्वी आदि स्कन्धों के छह भेद होते है ।

पृथ्वी, पर्वत आदि अति स्थूल स्थूल स्कन्ध कहे गये है। घी. जल, तेल आदि स्थूल स्कन्ध हैं, यह जानना चाहिए।

छाया, धूप आदि स्थूलसूक्ष्म स्कन्ध है, ऐसा जानो। और चार इन्द्रियो के विषयभूत स्कन्ध सूक्ष्मस्थूल है. ऐसा कहा गया है।

पुन कर्म वर्गणा के योग्य स्कन्ध सूक्ष्म होते है और उनसे विपरीत (कर्म वर्गणा के अयोग्य स्कन्ध) अति सूक्ष्म होते है, ऐसा कहते है।

कारण परमाणु और कार्य परमाणु

गाहा - **धाउचउक्कस्स पुणो, जं हेदू कारणं ति तं णेयो ।**
खंधाणं अवसाणो, णादव्वो कज्जपरमाणू ॥२-६-२५॥

अन्वयार्थ—(**पुणो**) पुन (**धाउचउक्कस्स**) धातु-चतुष्क का—पृथ्वी, जल, तेज और वायु का (**जं हेदू**) जो कारण है (**तं**) वह (**कारणं**) कारण परमाणु है (**ति**) ऐसा (**णेयो**) जानना (**खंधाणं**) स्कन्धो के (**अवसाणो**) अवसान को (**कज्जपरमाणू**) कार्य परमाणु (**णादव्वो**) जानना चाहिये ।

अर्थ—पुन धातु-चतुष्क का (पृथ्वी, जल, तेज और वायु का) जो कारण है, वह कारण परमाणु है, ऐसा जानना । स्कन्धो के अवसान को कार्य परमाणु जानना चाहिये ।

गाहा—**अत्तादि अत्तमज्झं, अत्तंतं णेव इंदिए गेज्झं ।**
अविभागी जं दव्वं, परमाणू तं वियाणाहि ॥२-७-२६॥

अन्वयार्थ—(**अत्तादि**) स्वस्वरूप ही जिसका आदि है (**अत्तमज्झं**) स्वस्वरूप ही जिसका मध्य है—और (**अत्तंतं**) स्वस्वरूप ही जिसका अन्त है (**इंदिए**) इन्द्रियों के द्वारा जो (**णेवगेज्झं**) ग्राह्य-ग्रहण करने योग्य नही है (**जं**) जो (**अविभागी**) अविभागी है (**तं दव्वं**) उस द्रव्य को (**परमाणू**) परमाणु (**वियाणाहि**) जानो ।

अर्थ—स्वस्वरूप ही जिसका आदि है, स्वस्वरूप ही जिसका मध्य है और स्वस्वरूप ही जिसका अन्त है, जो इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण नही किया जा सकता और जो अविभागी है, उस द्रव्य को परमाणु जानो ।

गाहा - **एगरसरूवगंधं, दोफासं तं हवे सहावगुणं ।**
विहावगुणमिदि भणिदं, जिणसमये सव्वपयडत्तं ॥२-८-२७॥

अन्वयार्थ - **(एगरसरूवगंधं)** जो एक रस, एक रूप, एक गध वाला है **(दो फासं)** और दो स्पर्श वाला है **(तं)** वह **(सहावगुणं)** स्वभाव गुण वाला **(हवे)** है **(विहावगुणं)** विभाव गुण वाले को **(जिणसासणे)** जिन शासन मे **(सव्वपयडत्तं)** सर्व प्रगट - सब इन्द्रियो मे ग्राह्य **(इदि भणिदं)** ऐसा कहा है।

अर्थ -- जो एक रस, एक रूप, एक गन्ध और दो स्पर्श वाला है, वह (परमाणु) स्वभाव गुण वाला है। विभाव गुण वाले को जिन शासन मे सर्वप्रगट (सब इन्द्रियो से ग्राह्य) कहा है।

उग्गाहा — अण्णणिरावेक्खो जो, परिणामो सो सहावपज्जाओ ।
खंधसरूवेण पुणो, परिणामो सो विहावपज्जाओ ॥
॥२-६-२८॥

अन्वयार्थ—(**जो**) जो (**परिणामो**) परिणाम (**अण्णणिरवेक्खो**) अन्य की अपेक्षा से रहित है (**सो**) वह (**सहावपज्जाओ**) स्वभाव पर्याय है (**पुणो**) पुनः-जो (**खंधरूवेण**) स्कन्ध रूप (**परिणामो**) परिणाम है (**सो**) वह (**विहावपज्जाओ**) विभाव पर्याय है।

अर्थ—जो परिणाम अन्य की अपेक्षा से रहित है, वह स्वभाव-पर्याय है। पुनः जो स्कन्धरूप परिणाम है, वह विभाव पर्याय है।

निश्चय और व्यवहार की अपेक्षा पुद्गल

गाहा—पोंग्गलदव्वं वुच्चदि, परमाणू णिच्छएण इदरेण।
पोंग्गलदव्वो त्ति पुणो, ववदेसो होदि खंधस्स ॥२-१०-२९॥

अन्वयार्थ—(**णिच्छएण**) निश्चय नय मे (**परमाणू**) परमाण् को (**पोंग्गलदव्वं**) पुद्गलद्रव्य (**वुच्चदि**) कहा जाता है। (**पुणो**) पुनः (**इदरेण**) व्यवहार नय मे (**खंधस्स**) स्कन्ध का (**पोंग्गलदव्वो**) पुद्गल द्रव्य (**त्ति**) यह (**ववदेसो**) नाम (**होदि**) है।

अर्थ निश्चय नय मे परमाणु को पुद्गल द्रव्य कहा है। पुन व्यवहार नय मे स्कन्ध का पुद्गल द्रव्य यह नाम है।

धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य का उपकार

गाहा—गमणणिमित्तं धम्मं, अधम्मं ठिदि जीवपॅग्गलाणं च ।
अवगहणं आयासं, जीवादीसव्वदव्वाणं ॥
॥२-११-३०॥

अन्वयार्थ—(**धम्मं**) धर्मद्रव्य (**जीवपॅग्गलाणं**) जीव और पुद्गलो को (**गमणणिमित्तं**) गमन मे निमित्त है (**च**) और (**अधम्मं**) अधर्मद्रव्य (**ठिदि**) उनकी स्थिति मे निमित्त है (**आयासं**) आकाश द्रव्य (**जीवादीसव्वदव्वाणं**) जीवादि सब द्रव्यो को (**अवगहणं**) अवगाहन का निमित्त है।

अर्थ—धर्मद्रव्य जीव और पुद्गल को गमन मे निमित्त है, अधर्म द्रव्य उनकी स्थिति में निमित्त है, आकाश द्रव्य जीवादि सब द्रव्यो को अवगाहन (स्थान देने मे) निमित्त है।

गाहा—**समयावलिभेदेण दु, दुवियप्प अहव होदि तिवियप्पं ।** ५
तीदो संखेज्जावलिहदसंठाणप्पमाणं तु ॥
॥२-१२-३१॥

अन्वयार्थ –(**समयावलिभेदेण दु**) समय और आवलि के भेद से—व्यवहार काल के (**दुवियप्पं**) दो भेद हैं (**अहव**) अथवा (**तिवियप्पं**) तीन भेद –भूत, भविष्य और वर्तमान (**होदि**) होते हैं (**तु**) और (**तीदो**) अतीत काल (**असंखेज्जावलिहदसंठाणप्पमाणं**) असख्यात-अनन्त आवलि प्रमाण है, ऐसा ही हद सठाण अर्थात् संस्थान रहित सिद्धो का प्रमाण है ।

अर्थ—समय और आवलि के भेद से (व्यवहार काल के) दो भेद है अथवा (भूत, भविष्य, वर्तमान—ये) तीन भेद है। और अतीत काल असंख्यात (अनन्त) आवलि प्रमाण है, ऐसा ही सस्थान रहित (सिद्धो का) प्रमाण है ।

गाहा—जीवादु पोंग्गलादो, णंतगुणा चावि संपदा समया।
लोयायासे संति य, परमट्ठो सो हवे कालो ॥२-१३-३२॥

अन्वयार्थ—(**संपदा**) अब निश्चय काल का कथन करते हैं (**जीवादु**) जीव से (**च**) और (**पोंग्गलादो**) पुद्गल से (**अवि**) भी (**अणंतगुणा**) अनन्त गुने (**समया**) समय है (**य**) और (**लोयायासे**) लोकाकाश मे—जो कालाणु (**संति**) है (**सो**) वह (**परमट्ठो**) परमार्थ (**कालो**) काल (**हवे**) है।

अर्थ—अब (निश्चय काल का कथन करते है)। जीव से और पुद्गल से भी अनन्त गुने समय है और लोकाकाश मे जो कालाणु है, वह परमार्थ काल है।

चार द्रव्यो मे विभाव गुण पर्याय नही होती

गाहा—जीवादीदव्वाणं, परिवट्टण कारणं हवे कालो ।
धम्मादिचदुण्णाणं, सहावगुणपज्जया होंति ॥२-१४-३३॥

अन्वयार्थ—(**जीवादीदव्वाणं**) जीव आदि द्रव्यो के (**परिवट्टण-कारणं**) परिवर्तन का कारण (**कालो**) काल (**हवे**) है (**धम्मादि चदुण्णाणं**) धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन चारो के (**सहावगुण पज्जया**) स्वभाव गुण-पर्याय (**होंति**) होती है ।

अर्थ—जीवादि द्रव्यों के परिवर्तन का कारण काल है । धर्म आदि चारो के (धर्म, अधर्म, आकाश और काल के) स्वभाव गुण-पर्याय होती है ।

गाहा—**एदे छद्दव्वाणि य, कालं मोॅत्तूण अत्थिकायत्ति ।**
णिद्दिट्ठा जिणसमये, काया हु बहुप्पदेसत्तं ॥२-१५-३४॥

अन्वयार्थ—(**कालं**) काल को (**मोॅत्तूण**) छोडकर (**एदे**) ये (**छद्दव्वाणि य**) छह द्रव्य (**अत्थिकाय त्ति**) अस्तिकाय हैं, ऐसा (**जिणसमये**) जिन शासन मे (**णिद्दिट्ठा**) कहा गया है (**बहु-पदेसत्तं**) बहुप्रदेशीपना (**हु**) निश्चय से (**काया**) काय कहलाता है।

अर्थ—काल को छोडकर ये छह द्रव्य (शेष पांच द्रव्य) अस्ति-काय हैं, ऐसा जिन शासन में कहा गया है। बहु प्रदेशीपना निश्चय मे काय कहलाता है।

छह द्रव्यो के प्रदेशो की सख्या।

गाहा—संखेज्जासंखेज्जा-णंतपदेसा हवंति मुत्तस्स।
धम्माधम्मस्स पुणो, जीवस्स असंखदेसा हु ॥२-१६-३५॥
लोयायासे ताव, इदरस्स अणंतयं हवे देसा।
कालस्स ण कायत्तं, एगपदेसो हवे-जम्हा ॥२-१७-३६॥

अन्वयार्थ - (मुत्तस्स) मूर्तिक द्रव्य पुद्गल के (संखेज्जा-संखेज्जाणंत पदेसा) सख्यात, असख्यात और अनन्त प्रदेश (हवंति) होते है (पुणो) और (धम्माधम्मस्स) धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य के (जीवस्स) और एक जीव के (असंखदेसा हु) असख्यात प्रदेश होते है (लोयायासे) लोकाकाश के (ताव) उतने अर्थात् असख्यात प्रदेश होते है (इदरस्स) अलोकाकाश के (अणंतयं) अनन्त (देसा) प्रदेश (हवे) होते है (कालस्स) काल द्रव्य के (कायत्तं ण) कायपना नही है (जम्हा) क्योकि वह (एगपदेसो) एक प्रदेशी (हवे) होता है।

अर्थ—मूर्तिक द्रव्य (पुद्गल) के सख्यात, असख्यात और अनन्त प्रदेश होते है। धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य और एक जीव के असख्यात प्रदेश होते है। लोकाकाश के उतने ही अर्थात् असख्यात प्रदेश होते है। आलोकाकाश के अनन्त प्रदेश होते है। कालद्रव्य के कायपना नही है क्योकि वह एक प्रदेशी होता है।

गाहा—पोंग्गलदव्वं मुत्तं, मुत्तिविरहिदा हवंति सेसाणि।
चेदणभावो जीवो, चेदणगुणवज्जिदा सेसा ॥२-१८-३७॥

अन्वयार्थ— (**पोंग्गलदव्वं**) पुद्गल द्रव्य (**मुत्तं**) मूर्तिक है (**सेसाणि**) शेष द्रव्य (**मुत्तिविरहिदा**) अमूर्तिक (**हवंति**) हैं (**जीवो**) जीव (**चेदणभावो**) चैतन्य भाव वाला है (**सेसा**) शेष द्रव्य (**चेदणगुणवज्जिदा**) चैतन्य गुण से रहति है।

अर्थ—पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है, शेष द्रव्य अमूर्तिक है। जीव चैतन्य भाव वाला है, शेष द्रव्य चैतन्य गुण से रहित है।

इति अजीवाधियारो बिदियो सुदक्खधो समत्तो

सुद्धभावाधियारो

हेयोपादेय तत्त्व का कथन

गाहा —**जीवादिबहित्तच्चं, हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा।**
कम्मोपाधिसमुब्भव-गुणपज्जएहिं वदिरित्तो ॥३-१-३८॥

अन्वयार्थ—(**जीवादिबहित्तच्चं**) जीवादि बाह्य तत्त्व (**हेयं**) हेय है (**अप्पणो**) आत्मा को (**अप्पा**) आत्मा (**उवादेयं**) उपादेय है—यह आत्मा (**कम्मोपाधिसमुब्भव-गुणपज्जएहिं**) कर्मोपाधि से उत्पन्न होने वाले गुण, पर्यायों से (**वदिरित्तो**) रहित है।

अर्थ—जीवादि बाह्य तत्त्व हेय है। आत्मा को (केवल) आत्मा (ही) उपादेय है। (यह आत्मा—कारण परमात्मा) कर्मोपाधि से उत्पन्न होने वाले गुण पर्यायों से रहित है।

उग्गाहा--णो खलु सहावठाणा, णो माणवमाणभावठाणा वा।
णो हरिसभावठाणा, णो जीवस्साहरिस्स ठाणा वा ॥
॥३-२-३९॥

अन्वयार्थ --**(जीवस्स)** शुद्ध जीव के **(खलु)** निश्चय से **(सहावठाणा)** स्वभाव स्थान **(णो)** नहीं है **(माणवमाणभावठाणा वा)** मान, अपमान भाव के स्थान **(णो)** नहीं है **(हरिसभावठाणा)** हर्ष भाव के स्थान **(णो)** नहीं है **(अहरिस्सभावठाणा वा)** और अहर्ष भाव के स्थान **(णो)** नहीं है।

अर्थ--शुद्ध जीव के निश्चय ही स्वभाव स्थान नहीं है, मान-अपमान भाव के स्थान नहीं है, हर्ष भाव के स्थान नहीं है और अहर्ष भाव के स्थान नहीं है।

गाहा—णो ठिदिबंधट्ठाणा, पयडिट्ठाणा पवेसठाणा वा।
णो अणुभागट्ठाणा, जीवस्स ण उदयठाणा वा॥
॥३-३-४०॥

अन्वयार्थ - **(जीवस्स)** जीव के **(ठिदिबंधट्ठाणा)** स्थिति बन्ध स्थान **(णो)** नही है **(पयडिट्ठाणा)** प्रकृति स्थान **(पवेसठाणा वा)** अथवा प्रदेश स्थान नही है **(अणुभागट्ठाणा)** अनुभाग स्थान **(णो)** नही है **(उदयठाणा वा)** और उदय स्थान **(णो)** नही हैं।

अर्थ—शुद्ध जीव के स्थितिबन्ध स्थान, प्रदेश स्थान अथवा प्रकृतिस्थान नही है, अनुभागस्थान नही है अथवा उदयस्थान नही है।

उग्गाहा--**णो खइयभावठाणा, णो खयउवसमसहावठाणा वा।**
ओवइयभावठाणा, णो उवसमणसहावठाणा वा॥
॥३-४-४१॥

अन्वयार्थ --जीव के (**खइयभावठाणा**) क्षायिक भाव के स्थान (**णो**) नही है (**खयउवसमसहावठाणा वा**) क्षयोपशम स्वभाव के स्थान (**णो**) नही है (**ओवइयभावठाणा**) औदयिक भाव के स्थान (**वा**) अथवा (**उवसमसहावठाणा**) उपशम स्वभाव के स्थान (**णो**) नही हैं।

अर्थ--जीव के क्षायिक भाव के स्थान नही है, क्षयोपशम स्वभाव के स्थान नही है, औदयिक भाव के स्थान अथवा उपशम स्वभाव के स्थान नही है।

गाहा चउगदिभवसंभमण, जादिजरामरणरोगसोगा य ।
कुलजोणिजीवमग्गणठाणा जीवस्स णो संति ॥३-५-४२॥

अन्वयार्थ- (**जीवस्स**) शुद्ध जीव के (**चउगदिभवसंभमणं**) चतुर्गति रूप भव-भ्रमण (**जादिजरामरणरोगसोगा य**) जन्म, जरा, मरण, रोग और शोक (**कुलजोणिजीवमग्गणठाणा**) कुल, योनि, जीव स्थान और मार्गणा स्थान (**णो संति**) नही है ।

अर्थ--शुद्ध जीव के चतुर्गति रूप भव-भ्रमण, जन्म, जरा, मरण रोग, शोक, कुल, योनि, जीवस्थान और मार्गणास्थान नही है ।

गाहा—णिद्दंडो णिद्दंदो, णिम्ममो णिक्कलो णिरालंबो ।
णीरागो णिद्दोसो, णिम्मूढो णिब्भओ अप्पा ॥३-६-४३॥

अन्वयार्थ (**अप्पा**) आत्मा (**णिद्दंडो**) दड रहित (**णिद्दंदो**) द्वन्द्व रहित (**णिम्ममो**) ममत्व रहित (**णिक्कलो**) शरीर रहित (**णिरालंबो**) आलम्बन रहित (**णीरागो**) राग रहित (**णिद्दोसो**) दोष रहित (**णिम्मूढो**) मूढता रहित और (**णिब्भओ**) भय रहित है ।

अर्थ—आत्मा दण्डरहित (मन, वचन, काय के योग्य द्रव्य कर्म और भाव कर्म का अभाव होने से दण्ड रहित), द्वन्द्वरहित, ममत्व-रहित, शरीर रहित, आलम्बन रहित, राग रहित, दोष रहित, मूढता रहित और भय रहित है ।

गाहा- **णिग्गंथो णीरागो, णिस्सल्लो सयलदोसणिम्मुक्को ।**
णिक्कामो णिक्कोहो, णिम्माणो णिम्मदो अप्पा ।।३-७-४४।।

अन्वयार्थ- (**अप्पा**) आत्मा (**णिग्गंथो**) अन्तर्बाह्य परिग्रह से रहित (**णीरागो**) रागरहित (**णिस्सल्लो**) शल्यरहित (**सयलदोस-णिम्मुक्को**) समस्त दोषो से विमुक्त (**णिक्कामो**) कामरहित (**णि-क्कोहो**) क्रोधरहित (**णिम्माणो**) मानरहित (**णिम्मदो**) मदरहित है।

अर्थ—आत्मा (शुद्ध जीव) अन्तर्बाह्य परिग्रह से रहित, राग-रहित, शल्यरहित, समस्त दोषो से विमुक्त, कामरहित, क्रोधरहित, मानरहित और मदरहित है।

गाहा – वण्णरसगंधफासा, थीपुंसणओसयादि पज्जाया ।
संठाणा संहणणा, सव्वे जीवस्स णो संति ।।३-८-४५।।

गाहा—अरसमरूवमगंधं, अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं ।
जाण अलिंगग्गहणं, जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ।।३-९-४६।।

अन्वयार्थ— (**वण्णरसगंधफासा**) वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श (**थीपुंसण-ओसयादि पज्जाया**) स्त्री, पुरुष, नपुसकादि पर्यायें (**संठाणा**) सस्थान (**संहणणा**) सहनन (**सव्वे**) ये सब (**जीवस्स**) जीव के (**णो संति**) नही है ।

(**जीवं**) जोव को (**अरसं**) रस रहित (**अरूवं**) रूप रहित (**अगंधं**) गध रहित (**अव्वत्तं**) अव्यक्त (**चेदणागुणं**) चैतन्य गुण-वाला (**असद्दं**) शब्द रहित (**अलिंगग्गहणं**) किसी लिंग द्वारा अग्राहय (**अणिद्दिट्ठसंठाणं**) किसी आकार से अनिर्दिश्य (**जाण**) जान ।

अर्थ– वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, स्त्री-पुरुष-नपुसक पर्यायें, सस्थान, सहनन—ये सब जीव के नही है ।

जीव को रसरहित, रूपरहित, गन्धरहित, अव्यक्त, चैतन्य गुण-वाला, शब्दरहित, किसी लिंग द्वारा अग्राहय और किसी आकार से अनिर्दिश्य जान ।

गाहा—जारिसिया सिद्धप्पा, भवमल्लिय जीवा तारिसा होंति।
जर-मरण-जम्म मुक्का, अट्ठगुणालंकिदा जेण ॥
॥३-१०-४७॥

अन्वयार्थ— (**जारिसिया**) जैसे (**सिद्धप्पा**) सिद्धात्मा है (**तारिसा**) वैसे ही (**भवमल्लिय**) ससार मे लीन (**जीवा**) जीव (**होंति**) होते है (**जेण**) जिस कारण से— ये (**जर-मरण-जम्म मुक्का**) जरा, मरण और जन्म से मुक्त है और (**अट्ठगुणालंकिदा**) आठ गुणो से अलकृत है।

अर्थ—जैसे सिद्धात्मा है, वैसे ही ससार मे लीन (ससारी) जीव होते है, जिस कारण से ये जरा मरण और जन्म से मुक्त है और आठ गुणो से अलकृत है।

गाहा—**असरीरा अविणासा, अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा।**
जह लोयग्गे सिद्धा, तह जीवा संसिदी णेया॥
॥३-११-४८॥

अन्वयार्थ—(**जह**) जिस प्रकार (**लोयग्गे**) लोक के अग्र भाग मे (**सिद्धा**) सिद्ध भगवान (**असरीरा**) अशरीरी (**अविणासा**) अविनाशी (**अणिंदिया**) अतीन्द्रिय ज्ञान सम्पन्न (**णिम्मला**) निर्मल और विशुद्ध आत्मा है (**तह**) उसी प्रकार (**संसिदी**) ससार मे (**जीवा**) जीव (**णेया**) जानने चाहिए।

अर्थ—जिस प्रकार लोक के अग्र भाग मे सिद्ध भगवान अशरीरी, अविनाशी, अतीन्द्रिय ज्ञान सम्पन्न, निर्मल और विशुद्धात्मा है, उसी प्रकार ससार मे (ससारी) जीव जानने चाहिए।

गाहा—एदे सव्वे भावा, ववहारणयं पडुच्च भणिदा हु ।
सव्वे सिद्धसहावा, सुद्धणया संसिदी जीवा ॥३-१२-४९॥

अन्वयार्थ - **(एदे)** ये **(सव्वे)** सब **(भावा)** भाव **(हु)** वास्तव मे **(ववहारणयं पडुच्च)** व्यवहार नय का आश्रय करके **(भणिदा)** कहे गये है **(सुद्धणया)** शुद्ध नय मे **(संसिदी)** ससार के **(सव्वे)** सब **(जीवा)** जीव **(सिद्धसहावा)** सिद्ध भगवान के समान स्वभाव वाले है ।

अर्थ- ये सब (पूर्वोक्त) भाव वास्तव मे व्यवहार नय का आश्रय करके कहे गये है । शुद्ध नय से ससार के सभी जीव सिद्ध भगवान के समान स्वभाव वाले है ।

गाहा— पुव्वुत्त सयलभावा, परदव्वं परसहावमिदि हेयं ।
सगदव्वमुवादेयं, अंतरतच्चं हवे अप्पा ॥३-१३-५०॥

अन्वयार्थ – (**पुव्वुत्त सयलभावा**) पूर्वोक्त समस्त भाव (**परसहावं**) पर स्वभाव है (**परदव्वं**) पर द्रव्य है (**इदि**) इसलिए (**हेयं**) हेय हैं (**अंतरतच्चं**) अन्तस्तत्त्व ऐसा (**सगदव्वं**) स्वद्रव्य (**अप्पा**) आत्मा (**उवादेयं**) उपादेय हैं ।

अर्थ—पूर्वोक्त समस्त भाव पर स्वभाव हैं, परद्रव्य है, इसलिए हेय है । अन्तस्तत्त्व ऐसा स्वद्रव्य आत्मा उपादेय है ।

गाहा—विवरीदाभिणिवेसविवज्जिद सद्दहणमेव सम्मत्तं ।
संसयविमोहविब्भमविवज्जिदं होदि सण्णाणं ॥
॥३-१४-५१॥

गाहा - चलमलिणमगाढत्तविवज्जिद सद्दहणमेव सम्मत्तं ।
अधिगमभावो णाण, हेयोपादेयतच्चाणं ॥
॥३-१५-५२॥

गाहा—सम्मत्तस्स णिमित्तं, जिणसुतं तस्स जाणया पुरिसा ।
अंतरहेदू भणिदा, दंसणमोहस्स खय पहुदी ॥
॥३-१६-५३॥

गाहा सम्मत्त सण्णाणं, विज्जदि मोक्खस्स होदि सुण चरणं ।
ववहारणिच्छएण दु, तम्हा चरण पवक्खामि ॥
॥३-१७-५४॥

गाहा - ववहारणयचरित्ते, ववहारणयस्स होदि तवचरण ।
णिच्छयणयचारित्ते, तवचरणं होदि णिच्छयदो ॥
॥३-१८-५५॥

अन्वयार्थ (**विवरीदाभिणिवेसविवज्जिद सद्दहणमेव**) विपरीत अभिनिवेश रहित श्रद्धान ही (**सम्मत्तं**) सम्यग्दर्शन है (**ससयविमोह-विब्भमविवज्जिदं**) संशय, विमोह और विभ्रम से रहित—ज्ञान (**सण्णाणं**) सम्यग्ज्ञान (**होदि**) है ।

(**चलमलिणमगाढत्तविवज्जिद सद्दहणमेव**) चल, मलिन और अगाढरहित श्रद्धान ही (**सम्मत्तं**) सम्यक्त्व है (**हेयोपादेयतच्चाणं**) हेय और उपादेय तत्त्वों का (**अधिगमभावो**) जानने रूप भाव (**णाणं**) ज्ञान है ।

(**सम्मत्तस्स**) सम्यग्दर्शन के लिये (**णिमित्तं**) बाह्य निमित्त (**जिण-सुत्तं**) जिनेन्द्र द्वारा कथित द्रव्य श्रुत अथवा (**तस्स**) उस जिन सूत्र के (**जाणया पुरिसा**) जानने वाले पुरुष है (**दंसणमोहस्स**) दर्शन मोह-

नीय कर्म के (**खय पहुदी**) क्षय आदि को (**अंतरहेदू**) अन्तरग कारण (**भणिदा**) कहा है।

(**मोक्खस्स**) मोक्ष-प्राप्ति के लिये (**सम्मत्तं**) सम्यक्त्व होता है (**सण्णाणं**) सम्यग्ज्ञान (**विज्जदि**) रहता है (**चरणं**) चारित्र (**होदि**) होता है (**तम्हा**)इसलिये– मैं (**ववहारणिच्छएण दु**) व्यवहार और निश्चय से (**चरणं**) चारित्र को (**पवक्खामि**) कहूँगा (**सुण**) तू सुन।

(**ववहारणयचरित्ते**) व्यवहार नय के चारित्र में (**ववहारणयस्स**) व्यवहार नय का (**तवचरणं**) तपश्चरण (**होदि**) होता है (**णिच्छयणय-चारित्ते**) निश्चय नय के चारित्र में (**णिच्छयदो**) निश्चय से (**तवचरणं**) तपश्चरण (**होदि**) होता है।

अर्थ—विपरीत अभिनिवेश रहित श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है। संशय, विमोह, विभ्रम से रहित ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।

चल, मलिन और अगाढरहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है। हेय और उपादेय तत्त्वों का जानने रूप भाव ज्ञान है।

सम्यग्दर्शन का बाह्य निमित्त जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित द्रव्यश्रुत है या उस जिन सूत्र के जानने वाले पुरुष है। दर्शन मोहनीय के क्षय आदि को अन्तरग कारण कहा है।

मोक्ष-प्राप्ति के लिये सम्यक्त्व होता है, सम्यग्ज्ञान रहता है, चारित्र होता है। इसलिये मैं व्यवहार और निश्चय से चारित्र को कहूँगा, तू सुन।

व्यवहार नय के चारित्र में व्यवहार नय का तपश्चरण होता है और निश्चय नय के चारित्र में निश्चय से तपश्चरण होता है।

इदिसुद्धभावाधियारो तदियो सुदक्खधो समत्तो

ववहारचरित्ताधियारो

अहिंसा व्रत का स्वरूप

गाहा —**कुलजोणिजीवमग्गणठाणादिसु जाणिदूण जीवाणं ।**
तस्सारंभणियत्तणपरिणामो होदि पढमवदं ॥४-१-५६॥

अन्वयार्थ —(**जीवाणं**) जीवा के (**कुलजोणिजीवमग्गणठाणादिसु**) कुल, योनि, जीव स्थान, मार्गणा स्थान आदि (**जाणिदूण**) जानकर (**तस्स**) उनके (**आरंभणियत्तणपरिणामो**) आरम्भ से ही निवृत्ति रूप परिणाम—वह (**पढमवदं**) प्रथम व्रत (**होदि**) है।

अर्थ—जीवो के कुल, योनि, जीव स्थान, मार्गणा स्थान आदि जानकर उनके आरम्भ से निवृत्तिरूप परिणाम—वह प्रथम व्रत है।

गाहा--रागेण व दोसेण व मोहेण व मोसभासपरिणामं।
जो पजहदि साहु सया विदियवदं होदि तस्सेव ॥४-२-५७॥

अन्वयार्थ—(**रागेण व**) राग से (**दोसेण व**) द्वेष से (**मोहेण व**) अथवा मोह से होने वाले (**मोसभासपरिणामं**) असत्य भाषण के परिणाम को (**जो साहु**) जो साधु (**सया**) सदा (**पजहदि**) छोडता है (**तस्सेव**) उसी के (**विदियवदं**) द्वितीय व्रत (**होदि**) होता है।

अर्थ—राग से, द्वेष से अथवा मोह से होने वाले असत्य भाषण के परिणाम को जो साधु सदा छोडता है, उसी के द्वितीय व्रत होता है।

गाहा—गामे वा णयरे वा, रण्णे वा पेच्छिदूण परमट्ठं ।
जो मुयदि गहणभावं, तिदियवदं होदि तस्सेव ॥४-३-५८॥

अन्वयार्थ (**गामे वा**) ग्राम मे (**णयरे वा**) नगर मे (**रण्णे वा**) अथवा अरण्य मे (**परमट्ठ**) पराई वस्तु को (**पेच्छिदूण**) देखकर (**जो**) जो साधु (**गहणभावं**) ग्रहण के भाव को (**मुयदि**) छोडता है (**तस्सेव**) उसी के (**तिदियवदं**) तृतीय व्रत (**होदि**) होता है ।

अर्थ—ग्राम मे नगर मे अथवा अरण्य मे पराई वस्तु को देखकर जो साधु ग्रहण भाव को छोडता है, उसी के तृतीय व्रत होता है ।

गाहा—दट्ठूण इत्थिरूवं, वांछाभावं णिवत्तदे तासु।
मेहुणसण्णविवज्जिद परिणामो अहव तुरियवदं ॥४-४-५६॥

अन्वयार्थ —(**इत्थिरूवं**) स्त्रियों का रूप (**दट्ठूण**) देखकर (**तासु**) उनमे (**वांछाभावं**) इच्छा भाव को (**णिवत्तदे**) त्यागता है (**अहव**) अथवा (**मेहुणसण्णविवज्जिद परिणामो**) मैथुन संज्ञा रहित परिणाम करता है, उसके (**तुरियवदं**) चतुर्थ व्रत होता है।

अर्थ -स्त्रियो का रूप देखकर उनमे इच्छा भाव को त्यागता है अथवा मैथुन सज्ञा रहित परिणाम करता है, उसके चतुर्थ व्रत होता है।

गाहा—सव्वेसिं गंथाणं, चागो णिरवेँक्खभावणापुव्वं ।
पंचमवदमिदि भणिदं, चारित्तभरं वहंतस्स ।।४-५-६०।।

अन्वयार्थ—(**णिरवेँक्खभावणापुव्वं**) निरपेक्ष भावनापूर्वक (**सव्वेसि गंथाणं**) समस्त परिग्रह का (**चागो**) त्याग (**चारित्तभरं**) चारित्र के भार को (**वहंतस्स**) वहन करने वाले साधु का (**पंचम-वदं**) पचम व्रत है (**इदि**) ऐसा (**भणिदं**) कहा है ।

अर्थ - निरपेक्ष भावनापूर्वक समस्त (आभ्यन्तर और बाह्य) परिग्रह का त्याग चारित्र के भार को वहन करने वाले साधु का पचम व्रत है. ऐसा कहा है ।

गाहा—फासुगमग्गेण दिवा, अवलोगंतो जुगप्पमाणं हि ।
६ गच्छदि पुरदो समणो, इरियासमिदी हवे तस्स ।।४-६-६१।।

अन्वयार्थ—(**समणो**) जो साधु (**फासुगमग्गेण**) प्रासुक मार्ग से (**दिवा**) दिन मे (**जुगप्पमाणं हि**) युग प्रमाण (**पुरदो**) आगे (**अवलोगंतो**) देखता हुआ (**गच्छदि**) चलता है (**तस्स**) उसके (**इरियासमिदी**) ईर्यासमित (**हवे**) होती है ।

अर्थ—जो साधु प्रासुक (जीव जन्तु रहित) मार्ग से दिन में **युग** प्रमाण आगे देखकर चलता है, उसके ईर्यासमिति होती है ।

गाहा पेसुण्णहासकक्कसपरणिंदप्पपसंसिदं वयणं ।
परिचित्ता सपरहिदं, भासासमिदी वदंतस्स ॥४-७-६२॥

अन्वयार्थ—(**पेसुण्णहासकक्कसपरणिंदप्पपसंसिदं**) पैशुन्य—चुगली, हास्य, कर्कश, परनिंदा और आत्म प्रशंसा रूप (**वयणं**) वचन को (**परिचित्ता**) त्याग कर (**सपरहिदं**) स्व और पर हित रूप (**वदंतस्स**) बोलने वाले साधु के (**भासासमिदी**) भाषा समिति होती है ।

अर्थ—पैशुन्य (चुगली), हास्य, कर्कश, परनिन्दा और आत्म प्रशसा रूप वचन को छोड़कर स्व और परहित रूप बोलने वाले साधु के भाषा समिति होती है ।

गाहा—**कदकारिदाणुमोदणरहिदं तह पासुगं पसत्थं च ।**
दिण्णं परेण भत्तं, संभुत्ती एसणासमिदी ॥४-८-६३॥

अन्वयार्थ—(**कदकारिदाणुमोदणरहिदं**) कृत, कारित और अनुमोदना रहित (**तह**) तथा (**पासुगं**) प्रासुक (**पसत्थं च**) और शास्त्र मे प्रशसित (**परेण**) श्रावक के द्वारा (**दिण्णं**) भक्ति से दिये हुए (**भत्तं**) आहार को (**संभुत्ती**) समभाव से ग्रहण करना (**एसणासमिदी**) एषणा समिति है ।

अर्थ—कृत-कारित और अनुमोदना रहित तथा प्रासुक और शास्त्र मे प्रशंसित, श्रावक के द्वारा भक्ति से दिये हुए आहार को समभाव से ग्रहण करना एषणा समिति है ।

गाहा—**पुत्थय कमंडलादि, गहणविसग्गेसु पयत परिणामो ।**
आदावणणिक्खेवणसमिदी होदि त्ति णिद्दिट्ठा ॥४-६-६४॥

अन्वयार्थ- (**पुत्थयकमडलादि**) पुस्तक, कमण्डल आदि के (**गहणविसग्गेसु**) उठाने, धरने में (**पयतपरिणामो**) यत्नाचार के जो परिणाम है, वह (**आदावणणिक्खेवणसमिदी**) आदान निक्षेपण समिति (**होदि**) है (**त्ति**) ऐसा (**णिद्दिट्ठा**) कहा है ।

अर्थ—पुस्तक, कमण्डल आदि के उठाने, धरने मे यत्नाचार के जो परिणाम है, वह आदान निक्षेपण समिति है, ऐसा कहा है ।

प्रतिष्ठापन समिति का स्वरूप

गाहा—**फासुगभूमिपदेसे, गूढे रहिदे परोपरोहेण।**
उच्चारादिच्चागो, पइट्ठासमिदी हवे तस्स ॥४-१०-६५॥

अन्वयार्थ—(**गूढे**) एकान्त (**परोपरोहेण रहिदे**) अन्य द्वारा रोका न जाय, ऐसे (**फासुगभूमिपदेसे**) प्रासुक भूमि प्रदेश मे (**उच्चारादिच्चागो**) मल-मूत्रादि का त्याग करता है (**तस्स**) उस मुनि के (**पइट्ठासमिदी**) प्रतिष्ठापना समिति (**हवे**) होती है।

अर्थ—एकान्त, अन्य द्वारा रोका न जाय, ऐसे प्रासुक भूमि-प्रदेश मे जो मल मूत्रादि का त्याग करता है, उस मुनि के प्रतिष्ठापना समिति होती है।

व्यवहार मनोगुप्ति

गाहा —**कालुस्समोहसण्णारागद्दोसाबि असुहभावाणं ।**
परिहारो मणुगुत्ती, ववहारणयेण परिकहिदं ।।४-११-६६।।

अन्वयार्थ — (**कालुस्समोहसण्णारागद्दोसाबि असुहभावाणं**) कलुषता, मोह, सज्ञा, राग, द्वेषादि अशुभ भावो का (**परिहारो**) परिहार (**ववहारणयेण**) व्यवहार नय से (**मणुगुत्ती**) मनोगुप्ति (**परिकहिदं**) कही है ।

अर्थ—कलुषता, मोह, सज्ञा, राग, द्वेषादि अशुभ भावों का परिहार व्यवहार नय से मनोगुप्ति कही है ।

गाहा—इत्थीराजचोरभत्तकहादिवयणस्स पावहेउस्स ।
परिहारो वचगुत्ती, अलियादिणियत्तिवयणं वा ॥४-१२-६७॥

अन्वयार्थ—(पावहेउस्स) पाप के कारण (इत्थीराजचोरभत्त-कहादिवयणस्स) स्त्रीकथा, राजकथा, चोरकथा, भत्तकथा आदि रूप वचनों का (परिहारो) परिहार (वा) अथवा (अलियादिणियत्ति-वयणं) असत्य की निवृत्ति वाले वचन (वचगुत्ती) वचन गुप्ति है।

अर्थ—पाप के कारण स्त्री कथा, राजकथा, चोरकथा, भत्तकथा आदि रूप वचनों का परिहार अथवा असत्य की निवृत्ति वाले वचन वचनगुप्ति है।

गाहा—**बंधण-छेदण-मारण-आकुंचण तह पसारणादीया ।**
कायकिरिया णियत्ती, णिद्दिट्ठा कायगुत्ति त्ति ॥४-१३-६८॥

अन्वयार्थ—(**बंधण-छेदण-मारण-आकुंचण**) बन्धन, छेदन, मारण, आकुचन (**तह**) तथा (**पसारणादीया**) प्रसारण आदि (**काय-किरियाणियत्ती**) शरीर की क्रियाओ की निवृत्ति (**कायगुत्ति**) काय-गुप्ति (**त्ति**) ऐसा (**णिद्दिट्ठा**) कहा गया है ।

अर्थ -बन्धन, छेदन, मारण, आकुचन तथा प्रसारण आदि शरीर की क्रियाओ की निवृत्ति कायगुप्ति है, ऐसा कहा गया है ।

निश्चय मनोगुप्ति और वचनगुप्ति

गाहा—जा रायादिणियत्ती, मणस्स जाणीहि तम्मणोगुत्ती ।
अलियादिणियत्तिं वा, मोणं वा होदि वदिगुत्ती ॥ ६
४-१४-६९॥

अन्वयार्थ— (**मणस्स**) मन से (**जा**) जो (**रायादिणियत्ती**) रागादि की निवृत्ति (**तं**) उसे (**मणोगुत्ती**) मनोगुप्ति (**जाणीहि**) जानो (**अलियादिणियत्तिं वा**) असत्य आदि की निवृत्ति (**मोणं वा**) अथवा मौन (**वदिगुत्ती**) वचनगुप्ति (**होदि**) है ।

अर्थ—मन से जो रागादि की निवृत्ति, उसे मनोगुप्ति जानो । असत्य आदि की निवृत्ति अथवा मौन वचनगुप्ति है ।

निश्चय कायगुप्ति

गाहा—**कायकिरियाणियत्ती, काउस्सग्गो सरीरगे गुत्ती ।**
हिंसाविणियत्ती वा, सरीरगुत्ति त्ति णिद्दिट्ठा ।।४-१५-७०।।

अन्वयार्थ—(**कायकिरियाणियत्ती**) काय की क्रियाओ की निवृत्ति रूप (**काउस्सग्गो**) कायोत्सर्ग (**सरीरगे गुत्ती**) शरीर सम्बन्धी गुप्ति है (**वा**) अथवा (**हिंसाविणियत्ती**) हिंसादि की निवृत्ति (**सरीरगुत्ति**) शरीर गुप्ति है (**त्ति**) ऐसा (**णिद्दिट्ठा**) कहा है ।

अर्थ—काय की क्रियाओ की निवृत्ति रूप कायोत्सर्ग शरीर सम्बन्धी गुप्ति है। अथवा हिंसादि की निवृत्ति शरीर गुप्ति है, ऐसा कहा है।

गाहा— **घणघाविकम्मरहिवा, केवलणाणाविपरमगुणसहिवा ।**
चोत्तिसअविसयजुत्ता, अरिहंता एरिसा हौंति ॥

॥४-१६-७१॥

अन्वयार्थ—(**घणघाविकम्मरहिवा**) घाति कर्मों से रहित (**केवल-णाणाविपरमगुणसहिवा**) केवलज्ञान आदि उत्कृष्ट गुणो से युक्त (**चोत्तिसअविसयजुत्ता**) चौंतीस अतिशयों से युक्त (**एरिसा**) ऐसे (**अरिहंता**) अर्हन्त (**हौंति**) होते है ।

अर्थ—घाति कर्मों से रहित, केवलज्ञान आदि उत्कृष्ट गुणो से युक्त और चौंतीस अतिशयो से सयुक्त ऐसे अर्हन्त होते हैं ।

गाहा—णट्ठट्ठकम्मबंधा, अट्ठमहागुणसमण्णिदा परमा।
लोयग्गठिदा णिच्चा, सिद्धा ते एरिसा होंति ॥

॥४-१७-७२॥

अन्वयार्थ—(**णट्ठट्ठकम्मबंधा**) आठ कर्मों के बन्ध को जिन्होने नष्ट कर दिया है (**अट्ठमहागुणसमण्णिदा**) आठ महागुणो से समन्वित (**परमा**) उत्कृष्ट (**लोयग्गठिदा**) लोकाग्र मे स्थित (**णिच्चा**) नित्य (**एरिसा**) ऐमे (**ते**) वे (**सिद्धा**) सिद्ध (**होंति**) होते है।

अर्थ—आठ कर्मों के बन्ध को जिन्होने नष्ट कर दिया है, आठ महागुणो से समन्विन, उत्कृष्ट, लोकाग्र में स्थित और नित्य—ऐसे वे सिद्ध होते है।

गाहा—पंचाचारसमग्गा, पंचिंदियदंतिवप्पणिद्दलणा।
धीरा गुणगंभीरा, आयरिया एरिसा होंति ॥४-१८-७३॥

अन्वयार्थ—(**पंचाचारसमग्गा**) पंचाचार से पूर्ण (**पंचिंदियदंति-वप्पणिद्दलणा**) पचेन्द्रिय रूपी हाथी के मद को निर्दलन करने वाले (**धीरा**) धोर (**गुणगंभीरा**) गुणो से गंभीर (**एरिसा**) ऐसे (**आयरिया**) आचार्य (**होंति**) होते है।

अर्थ- पचाचार से पूर्ण, पचेन्द्रिय रूपी हाथी के मद को निर्दलन करने वाले, धीर और गुणो मे गभीर -ऐसे आचार्य होते है।

गाहा—रयणत्तयसंजुत्ता, जिणकहिदपयत्थदेसया सूरा ।
णिक्कंखभावसहिदा, उवज्झाया एरिसा होंति ॥४-१६-७४॥

अन्वयार्थ—(**रयणत्तयसंजुत्ता**) रत्नत्रय से सयुक्त (**जिणकहिदपयत्थदेसया**) जिनेन्द्र कथित पदार्थों का उपदेश करने वाले (**सूरा**) उपसर्ग-परीषह के सहने मे शूर (**णिक्कंखभावसहिदा**) निष्कांक्षा भावना सहित (**एरिसा**) ऐसे (**उवज्झाया**) उपाध्याय (**होंति**) होते है।

अर्थ—रत्नत्रय से सयुक्त, जिनेन्द्र कथित पदार्थों का उपदेश करने वाले, (उपसर्ग-परीषह के सहन करने मे) शूर और निष्काक्षा भावना सहित—ऐसे उपाध्याय होते है।

गाहा—**वावारविप्पमुक्का, चउव्विहाराहणासयारत्ता ।**
णिग्गंथा णिम्मोहा, साहू एदेरिसा होंति ॥४-२०-७५॥

अन्वयार्थ—(**वावारविप्पमुक्का**) व्यापार से विप्रमुक्त (**चउव्विहाराहणासयारत्ता**) चार प्रकार की आराधनाओ मे सदा अनुरक्त (**णिग्गंथा**) निर्ग्रन्थ (**णिम्मोहा**) निर्मोह (**एदेरिसा**) ऐसे (**साहू**) साधु (**होंति**) होते हैं ।

अर्थ—(समस्त) व्यापार से विप्रमुक्त, चार प्रकार की आराधनाओ मे सदा अनुरक्त, निर्ग्रन्थ, निर्मोह—ऐसे साधु होते हैं ।

गाहा--एरिसयभावणाए, ववहारणयस्स होदि चारित्तं ।
णिच्छयणयस्स चरणं, एत्तो उड्ढं पवक्खामि ।।४-२१-७६।।

अन्वयार्थ – (**एरिसयभावणाए**) ऐसी भावना मे (**ववहार-णयस्स**) व्यवहार नय की अपेक्षा मे (**चारित्तं**) चारित्र (**होदि**) होता है (**णिच्छयणयस्स**) निश्चय नय की अपेक्षा से (**चरणं**) चारित्र (**एत्तो**) इसके (**उड्ढं**) आगे (**पवक्खामि**) कहूँगा ।

अर्थ--ऐसी (पूर्वोक्त) भावना मे व्यवहार नय की अपेक्षा से चारित्र होता है। निश्चय नय की अपेक्षा मे चारित्र इसके आगे कहूँगा ।

इदि ववहारचारित्ताधियारो चउत्थो सुदक्खो समत्तो

परमत्थ पडिक्कमणाधियारो

शुद्धात्मा के सकल कर्तृत्व का अभाव है

गाहा—णाहं णारयभावो, तिरियत्थोमणुवदेवपज्जाओ ।
कत्ता ण हि कारयिदा, अणुमंता णेव कत्तीणं ।।५-१-७७।।

गाहा—णाहं मग्गणठाणो, णाहं गुणठाण जीवठाणो ण ।
कत्ता ण हि कारयिदा, अणुमंता णेव कत्तीणं ।।५-२-७८।।

गाहा- णाहं बालो बुड्ढो, ण चेव तरुणो ण कारणं तेसिं ।
कत्ता ण हि कारयिदा, अणुमंता णेव कत्तीणं ।।५-३-७९।।

गाहा—णाहं रागो दोसो, ण चेव मोहो ण कारणं तेसिं ।
कत्ता ण हि कारयिदा, अणुमंता णेव कत्तीणं ।।५-४-८०।।

गाहा—णाहं कोहो माणो, ण चेव माया ण होमि लोहो हं ।
कत्ता ण हि कारयिदा, अणुमंता णेव कत्तीणं ।।५-५-८१।।

अन्वयार्थ- (**अहं**) मै (**णारयभावो**) नारक पर्याय (**तिरियत्थो-मणुवदेवपज्जाओ**) तिर्यञ्च पर्याय, मानुष पर्याय, देव पर्याय (**ण**) नही हूँ (**कत्ता ण हि कारयिदा**) मैं उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ (**कत्तीणं**) कर्त्ता का (**अणुमंता णेव**) अनुमोदक नही हूँ ।

(**अहं**) मैं (**मग्गणठाणो ण**) मार्गणा स्थान नही हूँ (**अहं**) मैं (**गुणठाण**) गुण स्थान (**ण**) नही हूँ (**जीवठाणो ण**) जीव स्थान नही हूँ (**कत्ता ण हि कारयिदा**) मैं उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ (**कत्तीणं**) कर्त्ता का (**अणुमंता णेव**) अनुमोदक नही हूँ ।

(**अहं बालो बुड्ढो ण**) मैं बाल, बृद्ध नही हूँ (**ण चेव तरुणो**) मै तरुण नही हूँ (**तेसिं**) उनका (**कारणं ण**) कारण भी नही हूँ (**कत्ता ण हि कारयिदा**) मैं उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ (**कत्तीणं**) कर्त्ता का (**अणुमंता णेव**) अनुमोदक नही हूँ ।

(**अहं**) मैं (**रागो दोसो ण**) राग नहीं हूँ, द्वेष नही हूँ (**ण चेव मोहो**) न मोह ही हूँ (**तेसिं कारणं ण**) न उनका कारण हूँ (**कत्ता**

ण हि कारयिदा) उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ (**कत्तीणं**) कर्त्ता का (**अणुमंता णेव**) अनुमोदक नहीं हूँ।

(**अहं**) मै (**कोहो माणो ण**) क्रोध नही हूँ, मान नही हूँ (**ण चेव माया**) न माया ही हूँ (**अहं**) मै (**लोहो ण होमि**) लोभ नहीं हूँ (**कत्ता ण हि कारयिदा**) उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ (**कत्तीणं**) कर्त्ता का (**अणुमंता णेव**) अनुमोदक नही हूँ।

अर्थ--मै नारक पर्याय, तिर्यञ्च पर्याय, मानुष पर्याय और देव पर्याय नही हूँ। मै उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ, और कर्त्ता का अनुमोदक नही हूँ।

मै मार्गणा स्थान नही हूँ, गुण स्थान नही हूँ, जीव स्थान नही हूँ। मैं उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ, न कर्त्ता का अनुमोदक ही हूँ।

मै बाल नही हूँ, बृद्ध नही हूँ, मै तरुण नही हूँ, उनका कारण भी नही हूँ। मै उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ, न कर्त्ता का अनुमोदक ही हूँ।

मै राग नही हूँ, द्वेष नही हूँ, न मोह ही हूँ, न उनका कारण हूँ। मैं उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ, न कर्त्ता का अनुमोदक ही हूँ।

मै क्रोध नही हूँ, मान नही हूँ, माया नही हूँ, न लोभ ही हूँ। मै उनका न कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ, न कर्त्ता का अनुमोदक ही हूँ।

भेदविज्ञान से निश्चय चारित्र होता है

गाहा—एरिसभेदब्भासे, मज्झत्थो होदि तेण चारित्तं।
तं दढकरणणिमित्तं, पडिक्कमणादी पवक्खामि ॥५-६-८२॥

अन्वयार्थ—(**एरिसभेदब्भासे**) ऐसा भेदाभ्यास होने पर (**मज्झत्थो**) जीव मध्यस्थ (**होदि**) हो जाता है (**तेण**) ऐसा होने पर (**चारित्तं**) चारित्र होता है (**तं**) उस चारित्र को (**दढकरणणिमित्तं**) दृढ़ करने के लिये (**पडिक्कमणादी**) मै प्रतिक्रमण आदि को (**पवक्खामि**) कहूँगा।

अर्थ—ऐसा भेदाभ्यास होने पर (जीव) मध्यस्थ हो जाता है। ऐसा होने पर चारित्र होता है। उस चारित्र को दृढ करने के लिये मैं प्रतिक्रमण आदि को कहूँगा।

गाहा – **मोत्तूण वयणरयणं, रागादीभाववारणं किच्चा ।**
अप्पाणं जो झायदि, तस्स दु होदि त्ति पडिकमणं ।।

।।५-७-८३।।

अन्वयार्थ (**वयणरयणं**) वचन रचना को (**मोत्तूण**) छोडकर (**रागादीभाववारणं**) रागादि भावो का निवारण (**किच्चा**) करके (**जो**) जो (**अप्पाणं**) आत्मा को (**झायदि**) ध्याता है (**तस्स दु**) उसके (**पडिकमणं**) प्रतिक्रमण (**होदि त्ति**) होता है ।

अर्थ —वचन-रचना को छोडकर, रागादि भावो का निवारण करके जो आत्मा को ध्याता है, उसके प्रतिक्रमण होता है ।

गाहा—आराहणाइ वट्टदि, मोत्तूण विराहणं विसेसेण ।
सो पडिकमणं वुच्चदि, पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥५-८-८४॥

अन्वयार्थ—(**विराहणं**) विराधना को (**विसेसेण**) विशेष रूप से (**मोत्तूण**) छोडकर जो (**आराहणाइ**) आराधना मे (**वट्टदि**) वर्तन करता है (**सो**) वह (**पडिकमणं**) प्रतिक्रमण (**वुच्चदि**) कहलाता है (**जम्हा**) क्योंकि वह (**पडिकमणमओ**) प्रतिक्रमणमय (**हवे**) होता है ।

अर्थ—विराधना को विशेष रूप से छोडकर जो आराधना मे वर्तन करता है, वह प्रतिक्रमण कहलाता है क्योकि वह प्रतिक्रमण-मय होता है ।

गाहा—**मोत्तूण अणायारं, आयारे जो दु कुणदि थिरभावं ।**
सो पडिकमणं वुच्चदि, पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥
॥५-६-८५॥

अन्वयार्थ—(**जो दु**) जो (**अणायारं**) अनाचार को (**मोत्तूण**) छोड-कर (**आयारे**) आचार मे (**थिरभावं**) स्थिर भाव (**कुणदि**) करता है (**सो**) वह (**पडिकमणं**) प्रतिक्रमण (**वुच्चदि**) कहलाता है (**जम्हा**) क्योकि वह (**पडिक्कमणमओ**) प्रतिक्रमणमय (**हवे**) है ।

अर्थ—जो अनाचार को छोडकर आचार मे स्थिर भाव करता है, वह प्रतिक्रमण कहलाता है क्योकि वह प्रतिक्रमणमय होता है ।

जिनमार्ग मे स्थिरता प्रतिक्रमण है

गाहा—उम्मग्गं परिचत्ता, जिणमग्गे जो दु कुणदि थिरभावं ।
सो पडिकमणं वुच्चदि, पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥
॥५-१०-८६॥

अन्वयार्थ- (**जो**) जो (**उम्मग्गं**) उन्मार्ग को (**परिचत्ता**) छोडकर (**जिणमग्गे**) जिन मार्ग मे (**थिरभावं**) स्थिर भाव (**कुणदि**) करता है (**सो**) वह (**पडिकमणं**) प्रतिक्रमण (**वुच्चदि**) कहलाता है (**जम्हा**) क्योकि वह (**पडिकमणमओ**) प्रतिक्रमणमय (**हवे**) होता है ।

अर्थ– जो उन्मार्ग को छोडकर जिनमार्ग मे स्थिर भाव करता है, वह प्रतिक्रमण कहलाता है क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय होता है ।

गाहा--मोत्तूण सल्लभावं, णिस्सल्ले जो दु साहू परिणमदि ।
सो पडिकमणं वुच्चदि, पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥
॥५-११-८७॥

अन्वयार्थ—(**जो दु**) जो (**साहू**) साधु (**सल्लभावं**) शल्य भाव को (**मोत्तूण**) छोडकर (**णिस्सल्ले**) नि:शल्य स्वरूप मे (**परिणमदि**) परिणमन करता है (**सो**) वह साधु (**पडिकमणं**) प्रतिक्रमण (**वुच्चदि**) कहलाता है (**जम्हा**) क्योकि वह (**पडिकमणमओ**) प्रतिक्रमणमय (**हवे**) होता है ।

अर्थ—जो साधु शल्य भाव को छोडकर नि:शल्य स्वरूप मे परिणमन करता है, वह (साधु) प्रतिक्रमण कहलाता है, क्योकि वह प्रतिक्रमणमय होता है ।

त्रिगुप्तिगुप्त साधु प्रतिक्रमण है

गाहा—चत्ता ह्यगुत्तिभावं, तिगुत्तिगुत्तो हवेदि जो साहू ।
सो पडिकमणं वुच्चदि, पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥
॥५-१२-८८॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (साहू) साधु (अगुत्तिभावं हि) अगुप्ति भाव को (चत्ता) छोडकर (तिगुत्तिगुत्तो) त्रिगुप्ति गुप्त (हवेदि) होता है (सो) वह साधु (पडिकमणं) प्रतिक्रमण (वुच्चदि) कहलाता है (जम्हा) क्योंकि वह (पडिकमणमओ) प्रतिक्रमणमय (हवे) होता है।

अर्थ—जो साधु अगुप्ति भाव को छोडकर त्रिगुप्ति गुप्त होता है, वह (साधु) प्रतिक्रमण कहलाता है क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय होता है।

गाहा—**मोत्तूण अट्टरुद्दं, झाणं जो झादि धम्मसुक्कं वा।**
सो पडिकमणं वुच्चदि, जिणवरणिद्दिट्ठ सुत्तेसु ॥५-१३-८९॥

अन्वयार्थ--(**जो**) जो (**अट्टरुद्दं**) आर्त्त और रौद्र ध्यान को (**मोत्तूण**) छोडकर (**धम्मसुक्कं वा**) धर्म अथवा शुक्ल (**झाणं**) ध्यान को (**झादि**) ध्याता है (**सो**) वह (**जिणवरणिद्दिट्ठसुत्तेसु**) जिनेन्द्रदेव कथित सूत्रो मे (**पडिकमणं**) प्रतिक्रमण (**वुच्चदि**) कहलाता है।

अर्थ--जो आर्त्त और रौद्र ध्यान को छोड़कर धर्म अथवा शुक्ल ध्यान को ध्याता है, वह जिनेन्द्र कथित सूत्रो में प्रतिक्रमण कहलाता है।

जीव ने सम्यक्त्व की भावना नही की

गाहा— मिच्छत्तपहुविभावा, पुव्वं जीवेण भाविद्गा सुइरं ।
सम्मत्तपहुविभावा, अभाविद्गा होंति जीवेण ॥५-१४-१९॥

अन्वयार्थ— (**पुव्वं**) पूर्व में (**जीवेण**) जीव ने (**सुइरं**) चिर काल तक (**मिच्छत्तपहुविभावा**) मिथ्यात्व आदि भावों को (**भाविद्गा**) भाया है (**जीवेण**) जीव ने (**सम्मत्तपहुविभावा**) सम्यक्त्व आदि भाव (**अभाविद्गा**) नही भाये (**होंति**) हैं ।

अर्थ—पूर्व में जीव ने चिरकाल तक मिथ्यात्व आदि भावो को भाया है । जीव ने सम्यक्त्व आदि भाव नही भाये है ।

गाहा---**मिच्छादंसणणाणचरित्तं चइदूण णिरवसेसेण।**
सम्मत्तणाणचरणं, जो भावदि सो पडिक्कमणं ॥५-१५-९१॥

अन्वयार्थ—(**जो**) जो (**मिच्छादंसणणाणचरित्तं**) मिथ्या दर्शन, मिथ्या ज्ञान और मिथ्या चारित्र को (**णिरवसेसेण**) सम्पूर्ण रूप से–सर्वथा (**चइदूण**) त्यागकर (**सम्मत्तणाणचरणं**) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की (**भावदि**) भावना करता है (**सो**) वह (**पडिक्कमणं**) प्रतिक्रमण स्वरूप कहलाता है।

अर्थ--जो मिथ्या दर्शन, मिथ्या ज्ञान और मिथ्या चारित्र को सर्वथा त्याग कर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की भावना करता है, वह प्रतिक्रमण स्वरूप कहलाता है।

निश्चय उत्तमार्थ प्रतिक्रमण का स्वरूप

गाहा—उत्तमअट्ठं आदा, तम्हि ठिदा हणदि मुणिवरा कम्मं।
तम्हा दु झाणमेव हि, उत्तमअट्ठस्स पडिकमणं॥
॥५-१६-९२॥

अन्वयार्थ—(**आदा**) आत्मा ही (**उत्तमअट्ठं**) उत्तमार्थ है (**तम्हि**) उसमे (**ठिदा**) स्थित (**मुणिवरा**) मुनिराज (**कम्मं**) कर्मों का (**हणदि**) नाश करते हैं (**तम्हा दु**) इसलिये (**झाणमेव हि**) ध्यान ही (**उत्तमअट्ठस्स**) उत्तमार्थ (**पडिकमणं**) प्रतिक्रमण है।

अर्थ—आत्मा ही उत्तमार्थ है। उसमें स्थित मुनिराज कर्मों का नाश करते हैं। इसलिये ध्यान ही उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है।

गाहा—**झाणणिलीणो साहू, परिचागं कुणदि सव्वदोसाणं ।**
तम्हा दु झाणमेव हि, सव्वदिचारस्स पडिकमणं ॥
॥५-१७-९३॥

अन्वयार्थ—(**झाणणिलीणो**) ध्यान मे लीन (**साहू**) साधु (**सव्वदोसाणं**) समस्त दोषो का (**परिचागं**) परित्याग (**कुणदि**) करता है (**तम्हा दु**) इसलिये (**झाणमेव हि**) ध्यान ही (**सव्वदि-चारस्स**) समस्त अतिचारों का (**पडिकमणं**) प्रतिक्रमण है ।

अर्थ—ध्यान मे लीन साधु समस्त दोषो का परित्याग करता है । इसलिये ध्यान ही समस्त अतिचारो का प्रतिक्रमण है ।

गाहा—पडिकमणणामधेये, सुत्ते जह वण्णिदं पडिक्कमणं ।
तह णच्चा जो भावदि, तस्स तदा होदि पडिकमणं ।।

५-१८-६४

अन्वयार्थ – (**पडिकमणणामधेये**) प्रतिक्रमण नामक (**सुत्ते**) सूत्र मे (**जह**) जैसा (**पडिक्कमणं**) प्रतिक्रमण का स्वरूप (**वण्णिदं**) बताया है (**तह**) उसको वैसा ही (**णच्चा**) जानकर (**जो**) जो (**भावदि**) उसकी भावना करता है (**तदा**) तभी (**तस्स**) उसके (**पडिकमणं**) प्रतिक्रमण (**होदि**) होता है ।

अर्थ—प्रतिक्रमण नामक सूत्र मे प्रतिक्रमण का जैसा स्वरूप बताया है, उसको वैसा ही जानकर जो उसकी भावना करता है, तभी उसके प्रतिक्रमण होता है ।

इदि परमत्थ पडिक्कमणाधियारो पचमोसुदक्खधो समत्तो

परमत्थपच्चक्खाणाधियारो

निश्चय प्रत्याख्यान का स्वरूप

गाहा—मोत्तूण सयलजप्पमणागदसुहमसुहवारणं किच्चा ।
अप्पाणं जो झायदि, पच्चक्खाणं हवे तस्स ॥६-१-९५॥

अन्वयार्थ—(**सयलजप्पं**) समस्त जल्प—वचन विस्तार को (**मोत्तूण**) छोडकर (**अणागदसुहमसुहवारणं**) भविष्य के शुभ और अशुभ का निवारण (**किच्चा**) करके (**जो**) जो (**अप्पाणं**) आत्मा को (**झायदि**) ध्याता है (**तस्स**) उसके (**पच्चक्खाणं**) प्रत्याख्यान (**हवे**) होता है ।

अर्थ—समस्त वचन विस्तार को छोडकर और भविष्य के शुभ-अशुभ का निवारण करके जो आत्मा का ध्यान करता है, उसके प्रत्याख्यान होता है ।

गाहा—केवलणाणसहावो, केवलदंसणसहाव सुहमइओ।
केवलसत्तिसहावो, सोहं इदि चिंतदे णाणी ॥६-२-९६॥

अन्वयार्थ—(**केवलणाणसहावो**) केवलज्ञान स्वभाव वाला (**केवलदंसणसहाव**) केवलदर्शन स्वभाव वाला (**सुखमइओ**) केवल सुखमय स्वभाव वाला (**केवलसत्तिसहावो**) केवल शक्ति-वीर्य स्वभाव वाला (**सोहं**) वह मै हूँ (**इदि**) इस प्रकार (**णाणी**) ज्ञानी (**चिंतदे**) विचार करता है।

अर्थ—केवलज्ञानस्वभाव वाला, केवलदर्शनस्वभाव वाला, केवल सुखमयस्वभाव वाला और केवल वीर्य स्वभाव वाला वह मैं हूँ, इस प्रकार ज्ञानी विचार करता है।

गाहा—णियभावं ण वि मुञ्चदि, परभावं णेव गिण्हदे केइं ।
जाणदि पस्सदि सव्वं, सोहं इदि चिंतदे णाणी ।।
।।६-३-९७।।

अन्वयार्थ—जो (**णियभावं**) निज भाव को (**ण वि मुञ्चदि**) नही छोडता (**केइं परभावं**) किसी परभाव को (**णेव गिण्हदे**) ग्रहण नही करता (**सव्वं**) सबको (**जाणदि पस्सदि**) जानता, देखता है (**सोहं**) वह मै हूँ (**इदि**) इस प्रकार (**णाणी**) ज्ञानी (**चिंतदे**) विचार करता है ।

अर्थ—जो निज भाव को नही छोडता, किसी भी परभाव को ग्रहण नही करता (और) सबको जानता-देखता है, वह मै हूँ, इस प्रकार ज्ञानी विचार करता है ।

गाहा—**पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिवज्जिदो अप्पा ।**
सोहं इदि चिंतिज्जो, तत्थेव य कुणदि थिरभावं ॥६-४-६८॥

अन्वयार्थ—(**पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिवज्जिदो**) प्रकृति-बन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध से रहित (**अप्पा**) जो आत्मा है (**सोहं**) वह मैं हूँ (**इदि**) ऐसा (**चिंतिज्जो**) विचार करता हुआ—ज्ञानी (**तत्थेव य**) उसी मे (**थिरभावं**) स्थिर भाव (**कुणदि**) करता है ।

अर्थ—प्रकृति बन्ध, स्थिति बन्ध, अनुभाग बन्ध और प्रदेश बन्ध से रहित जो आत्मा है, वह मै हूँ, इस प्रकार विचार करता हुआ (ज्ञानी) उसी मे स्थिर भाव करता है ।

अनुष्टुप—ममत्तिं परिवज्जामि, णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो ।
आलंवणं च मे आदा, अवसेसं च वोसरे ।।६-५-९९।।

अन्वयार्थ—मै (**ममत्तिं**) ममत्त्व को (**परिवज्जामि**) छोड़ता हूँ और (**णिम्ममत्ति**) निर्ममत्त्व मे (**उवट्ठिदो**) स्थित रहता हूँ (**च**) और (**आदा**) आत्मा (**मे**) मेरा (**आलंबणं**) आलम्बन है (**च**) **और** (**अवसेसं**) अवशेष को (**वोसरे**) छोडता हूँ ।

अर्थ—मै ममत्त्व को छोडता हूँ और निर्ममत्त्व मे स्थित होता हूँ । आत्मा मेरा आलम्बन है और अवशेष को छोडता हूँ ।

गाहा—आदा खु मज्झ णाणे, आदा मे दंसणे चरित्ते य।
आदा पच्चक्खाणे, आदा मे संवरे जोगे ॥६-६-१००॥

अन्वयार्थ—(**खु**) वास्तव मे (**मज्झ**) मेरे (**णाणे**) ज्ञान में (**आदा**) आत्मा है (**मे**) मेरे (**दंसणे**) दर्शन मे (**य**) और (**चरित्ते**) चारित्र मे (**आदा**) आत्मा है (**पच्चक्खाणे**) प्रत्याख्यान मे (**आदा**) आत्मा है (**मे**) मेरे (**संवरे**) सवर मे (**जोगे**) और योग मे (**आदा**) आत्मा है।

अर्थ—वास्तव मे मेरे ज्ञान मे आत्मा है, मेरे दर्शन और चारित्र मे आत्मा है, प्रत्याख्यान मे आत्मा है, मेरे सवर और योग मे आत्मा है।

गाहा **एगो य मरदि जीवो, एगो य जीवदि सयं।**
एगस्स जादि मरणं, एगो सिज्झदि णिरयो ॥६-७-१०१॥

अन्वयार्थ—(**एगो य जीवो**) जीव अकेला (**मरदि**) मरता है (**य**) और (**सयं**) स्वय (**एगो**) अकेला (**जीवदि**) जीता है (**एगस्स**) अकेले का (**मरणं**) मरण (**जादि**) होता है (**णिरयो**) रज रहित होकर (**एगो**) अकेला (**सिज्झदि**) सिद्ध होता है।

अर्थ जीव अकेला मरता है और स्वय अकेला जीता है; अकेले का मरण होता है और रजरहित होकर अकेला सिद्ध होता है।

अनुष्टुप — **एगो मे सासवो अप्पा, णाणदंसणलक्खणो ।**
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा ॥६-८-१०२॥

अन्वयार्थ—(**मे**) मेरा (**अप्पा**) आत्मा (**एगो**) एक है (**सासवो**) शाश्वत है (**णाणदंसणलक्खणो**) ज्ञान-दर्शन लक्षण वाला है (**मे**) मेरे (**सेसा**) शेष (**भावा**) भाव (**बाहिरा**) बाह्य है (**सव्वे**) वे सब (**संजोगलक्खणा**) सयोग लक्षण वाले है ।

अर्थ—मेरा आत्मा एक है, शाश्वत है, ज्ञान-दर्शन लक्षण वाला है । मेरे शेष भाव मुझसे बाह्य हैं, वे सब संयोग लक्षण वाले (संयोग जन्य) है ।

गाहा—जं किंचि मे दुच्चरित्तं, सव्वं तिविहेण वोसरे।
सामाइयं तु तिविहं, करेमि सव्वं णिरायारं ॥६-६-१०३॥

अन्वयार्थ—(**मे**) मेरा (**जं किंचि**) जो कुछ भी (**दुच्चरित्तं**) दुश्चारित्र है (**सव्वं**) उस सबको (**तिविहेण**) त्रिविध करणो से (**वोसरे**) छोडता हूँ (**तु**) और (**तिविहं**) तीन प्रकार की (**सामाइयं**) सामायिक-चारित्र (**सव्व**) उस सबको (**णिरायारं**) शुद्ध-निर्विकल्प (**करेमि**) करता हूँ।

अर्थ—मेरा जो कुछ भी दुश्चारित्र है, उस सबको मैं त्रिविध (करणो से-मन, वचन, काय से) छोडता हूँ और तीन प्रकार की सामायिक (चारित्र-सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि) उस सबको शुद्ध (निर्विकल्प) करता हूँ।

अनुष्टुप—**सम्मं मे सव्वभूदेसु, वेरं मज्झं ण केणवि।**
आसाए वोसरित्ताणं, समाहि पडिवज्जदे ॥६-१०-१०४॥

अन्वयार्थ—(**सव्वभूदेसु**) सभी जीवो के प्रति (**मे**) मेरा (**सम्मं**) समता भाव है (**केणवि**) किसी के साथ (**मज्झं**) मेरा (**वेरं**) वैर (**ण**) नही है (**णं**) वस्तुत मैं (**आसाए**) आशा को (**वोसरित्ता**) छोडकर (**समाहि**) समाधि को (**पडिवज्जदे**) प्राप्त करता हूँ।

अर्थ—सभी जीवो के प्रति मेरा समता भाव है, किसी के साथ मेरा बैर नही है। वस्तुत मै आशा को छोडकर समाधि को प्राप्त करता हूँ।

अनुष्टुप—णिक्कसायस्स दंतस्स, सूरस्स ववसायिणो ।
संसारभयभीदस्स, पच्चक्खाणं सुहं हवे ॥६-११-१०५॥

अन्वयार्थ—(**णिक्कसायस्स**) जो कषाय रहित है (**दंतस्स**) इन्द्रियों का दमन करने वाला है (**सूरस्स**) परीषह-उपसर्ग पर विजय प्राप्त करने मे शूर है (**ववसायिणो**) निश्चय परमतप करने मे उद्यमी है (**संसारभयभीदस्स**) ससार के भय से भयभीत है, उसके (**सुहं पच्चक्खाणं**) सुखमय प्रत्याख्यान (**हवे**) होता है।

अर्थ—जो कषाय रहित है, इन्द्रियो का दमन करने वाला है, (परीषह-उपसर्ग पर विजय प्राप्त करने मे) शूरवीर है, (निश्चय परम तप करने मे) उद्यमी है, ससार के भय से भयभीत है, उसके सुखमय प्रत्याख्यान होता है।

गाहा—एवं भेदब्भासं, जो कुव्वदि जीवकम्मणो णिच्चं।
पच्चक्खाणं सक्कदि, धरिदुं सो संजदो णियमा॥

॥६-१२-१०६॥

अन्वयार्थ—(**जो**) जो (**णिच्चं**) सदा (**जीवकम्मणो**) जीव और कर्म का (**एवं**) इस प्रकार (**भेदब्भासं**) भेदाभ्यास (**कुव्वदि**) करता है (**सो**) वह (**संजदो**) सयत (**णियमा**) नियम से (**पच्चक्खाणं**) प्रत्याख्यान (**धरिदुं**) धारण करने के लिये (**सक्कदि**) समर्थ है—धारण कर सकता है।

अर्थ—जो सदा इस प्रकार जीव और कर्म का भेदाभ्यास करता है, वह सयत नियम से प्रत्याख्यान धारण कर सकता है।

इदि परमत्थपच्चक्खाणाधियारो छट्टो सुदखंधो समत्तो

परमालोयणाधियारो

निश्चय आलोचना का स्वरूप

गाहा—णोकम्मकम्मरहिदं, विहावगुणपज्जयेहि वदिरित्तं ।
अप्पाणं जो झायदि, समणस्सालोयणं होदि ॥

॥७-१-१०७॥

अन्वयार्थ—(**जो**) जो (**णोकम्मकम्मरहिदं**) नोकर्म और कर्म से रहित—और (**विहावगुणपज्जयेहि**) विभाव गुण और पर्यायों से (**वदिरित्तं**) भिन्न (**अप्पाणं**) आत्मा को (**झायदि**) ध्याता है (**समणस्स**) उस श्रमण के (**आलोयणं**) आलोचना (**होदि**) होती है।

अर्थ—जो नोकर्म और कर्म से रहित और विभाव गुण और पर्यायों से भिन्न आत्मा को ध्याता है, उस श्रमण (मुनि) के आलोचना होती है।

**गाहा—आलोयणमालुंछणमवियडीकरणं य भावसुद्धी य ।
चउविहमिह परिकहिदं, आलोयणलक्खणं समये ।।**
।।७-२-१०८।।

अन्वयार्थ—(**इह**) यहां (**समये**) आगम मे (**आलोयणं**) आलोचन (**आलुंछण**) आलुछन (**अवियडीकरणं**) अविकृतिकरण (**य**) और (**भावसुद्धी**) भावशुद्धि—इस प्रकार (**चउविहं**) चार प्रकार (**आलोयणलक्खणं**) आलोचना का लक्षण (**परिकहिदं**) कहा गया है ।

अर्थ—यहा आगम मे आलोचना, आलुछन, अविकृतिकरण और भावशुद्धि—ऐसे चार प्रकार का आलोचना का लक्षण कहा गया है ।

गाहा—जो पस्सदि अप्पाणं, समभावे संठवित्तु परिणामं ।
आलोयणमिदि जाणह, परमजिणंदस्स उवएसं ।।
।।७-३-१०६।।

अन्वयार्थ—(**जो**) जो (**परिणामं**) परिणाम को (**समभावे**) समभाव मे (**संठवित्तु**) स्थापित करके (**अप्पाणं**) आत्मा को (**पस्सदि**) देखता है (**आलोयणं**) वह आलोचना है (**इदि**) ऐसा **परमजिणंदस्स**) परम जिनेन्द्र का (**उवएसं**) उपदेश (**जाणह**) जानो ।

अर्थ—जो परिणाम को समभाव मे स्थापित करके आत्मा को देखता है, वह आलोचना है, ऐसा परम जिनेन्द्र का उपदेश जानो ।

निज स्वाधीन भाव आलुछण है

गाहा—कम्ममहीरुहमूलच्छेदसमत्थो सकीयपरिणामो ।
साहीणो समभावो, आलुंछणमिदि समुद्दिट्ठं ॥७-४-११०॥

अन्वयार्थ—(कम्ममहीरुहमूलच्छेदसमत्थो) कर्मरूपी वृक्ष के मूल को नष्ट करने मे समर्थ (समभावो) समभाव रूप (साहीणो) स्वाधीन (सकीयपरिणामो) निज आत्म परिणाम (आलुंछणं) आलुछन (इदि) इस नाम से (समुद्दिट्ठं) कहा गया है।

अर्थ—कर्म रूपी वृक्ष के मूल को नष्ट करने मे समर्थ समता भाव रूप स्वाधीन निज आत्मपरिणाम आलुछन (इस नाम से) कहा गया है (उसे आलुछन कहा है)।

माध्यस्थ्य भाव अविकृतिकरण है

गाहा—कम्मादो अप्पाणं, भिण्णं भावेदि विमलगुणणिलयं ।
मज्झत्थभावणाएऽवियडीकरणं त्ति विण्णेयं ॥
॥७-५-१११॥

अन्वयार्थ--जो (**मज्झत्थभावणाए**) माध्यस्थ्य भावना मे (**कम्मादो**) कर्मों से (**भिण्णं**) भिन्न (**विमलगुणणिलयं**) निर्मल गुणो की निधान (**अप्पाणं**) आत्मा की (**भावेदि**) भावना करता है-- उसे (**अवियडीकरणं**) अविकृतिकरण (**त्ति**) ऐसा (**विण्णेयं**) जानना चाहिये ।

अर्थ—जो माध्यस्थ्य भावना मे कर्मों से भिन्न और निर्मल गुणों की निधान आत्मा की भावना करना है, उसे अविकृतिकरण जानना चाहिये ।

गाहा—**मदमाणमायलोहविवज्जिदभावो दु भावसुद्धि त्ति ।**
परिकहिदं भव्वाणं, लोयालोयप्पदरिसीहि ॥

॥७-६-११२॥

अन्वयार्थ –(**मदमाणमायलोहविवज्जिद भावो दु**) मद-काम परिणाम, मान, माया और लोभ से रहित भाव (**भावसुद्धि**) भाव-शुद्धि है (**त्ति**) इस प्रकार (**लोयालोयप्पदरिसीहि**) लोकालोक के देखने वालो ने (**भव्वाणं**) भव्यो के लिये (**परिकहिदं**) कहा है ।

अर्थ—कामपरिणाम, मान, माया और लोभ से रहित भाव भाव शुद्धि है, ऐसा लोकालोक के देखने वालो ने भव्यो के लिये कहा है ।

इदि परमालोयणाधियारो सत्तमो सुदखधो समत्तो

णिच्छयपायच्छित्ताधियारो

निश्चय प्रायश्चित का स्वरूप

गाहा-- **वदसमिदिसीलसंजमपरिणामो करणणिग्गहो भावो ।**
सो हवदि पायछित्तं, अणवरयं चेव कादव्वो ॥
॥८-१-११३॥

अन्वयार्थ (**वदसमिदिसीलसंजमपरिणामो**) व्रत, समिति, शील, संयम रूप परिणाम- और (**करणणिग्गहो**) इन्द्रियों के निग्रह रूप (**भावो**) भाव (**सो**) वह (**पायछित्तं**) प्रायश्चित (**हवदि**) है (**च**) और वह (**अणवरयंएव**) निरन्तर ही (**कादव्वो**) करना चाहिये ।

अर्थ--व्रत, समिति, शील, संयमरूप परिणाम और इन्द्रियों के निग्रह रूप भाव--वह प्रायश्चित है । वह निरन्तर करना चाहिये ।

आत्म गुणो का चिन्तन प्रायश्चित है

गाहा — **कोहादिसगब्भावक्खयपहुदिभावणाए णिग्गहणं ।**
पायच्छित्तं भणिदं णियगुणचिंता य णिच्छयदो ।।८-२-११४।

अन्वयार्थ — (**कोहादिसगब्भावक्खयपहुदिभावणाए**) क्रोध आदि स्वकीय भावो के क्षयादि की भावना मे (**णिग्गहणं**) वर्तना (**य**) और (**णियगुणचिंता**) निज गुणो का चिंतन करना (**णिच्छयदो**) निश्चय मे (**पायच्छित्तं**) प्रायश्चित (**भणिदं**) कहा गया है ।

अर्थ—क्रोध आदि स्वकीय भावो (विभावो) के क्षयादि की भावना मे वर्तना और निज गुणो का चिन्तन करना निश्चय से प्रायश्चित कहा गया है ।

गाहा—**कोहं खमया माणं, समद्दवेणज्जवेण मायं च।**
संतोसेण य लोहं, जयदि खु ए चउविहकसाए॥८-३-११५॥

अन्वयार्थ— (**कोहं**) क्रोध को (**खमया**) क्षमा से (**माणं**) मान को (**समद्दवेण**) निज मार्दव से (**च**) और (**मायं**) माया को (**अज्जवेण**) आर्जव से (**य**) और (**लोहं**) लोभ को (**संतोसेण**) सन्तोष से (**ए चउविहकसाए**) इन चार प्रकार की कषायो को—योगी (**खु**) वास्तव मे (**जयदि**) जीतता है।

अर्थ—क्रोध को क्षमा से, मान को निज मार्दव से, माया को आर्जव से और लोभ को सन्तोष से—इन चार प्रकार की कषायो को (योगी) वास्तव मे जीतता है।

गाहा—**उक्किट्ठो जो बोहो, णाणं तस्सेव अप्पणो चित्तं ।**
जो धरदि मुणी णिच्चं पायच्छित्तं हवे तस्स ॥
॥८-४-११६॥

अन्वयार्थ—(**तस्सेव**) उसी (**अप्पणो**) आत्मा का (**जो**) जो (**उक्किट्ठो**) उत्कृष्ठ (**बोहो**) ज्ञान-बोध (**णाणं**) ज्ञान (**चित्तं**) चित्त-उसे (**जो मुणी**) जो मुनि (**णिच्चं**) सदा (**धरदि**) धारण करता है (**तस्स**) उसके (**पायच्छित्तं**) प्रायश्चित (**हवे**) होता है।

अर्थ—उसी आत्मा का जो उत्कृष्ट बोध, ज्ञान अथवा चित्त - उसे जो मुनि सदा धारण करता है, उसके प्रायश्चित्त होता है।

परम तप प्रायश्चित है

गाहा—किं बहुणा भणिदेण दु वरतवचरणं महेसिणं सव्वं ।
पायच्छित्तं जाणह, अणेयकम्माण खयहेदु ।।
।।८-५-११७।।

अन्वयार्थ (**बहुणा**) बहुत (**भणिदेण दु**) कहने से (**किं**) क्या (**अणेयकम्माण**) अनेक कर्मों के (**खयहेदू**) क्षय का कारण (**महेसिणं**) महर्षियो का (**सव्वं**) समस्त (**वरतवचरणं**) उत्तम तपश्चरण—उसे (**पायच्छित्तं**) प्रायश्चित (**जाणह**) जानो।

अर्थ—बहुत कहने से क्या अनेक कर्मों के क्षय का कारण महर्षियो का समस्त उत्तम तपश्चरण—उसे प्रायश्चित जानो।

गाहा—णंताणंतभवेण समज्जिअसुहअसुहकम्मसंदोहो ।
तवचरणेण विणस्सदि, पायच्छित्तं तवं तम्हा ॥८-६-११८॥

अन्वयार्थ—(**णंताणंतभवेण**) अनन्तानन्त भवों द्वारा (**समज्जिअसुहअसुहकम्मसंदोहो**) उपार्जित शुभाशुभ कर्म-समूह (**तवचरणेण**) तपश्चरण से (**विणस्सदि**) नष्ट हो जाता है (**तम्हा**) इसलिये (**तवं**) तप (**पायच्छित्तं**) प्रायश्चित है।

अर्थ—अनन्तानन्त भवों द्वारा उपार्जित शुभाशुभ कर्म-समूह तपश्चरण से नष्ट हो जाता है। इसलिये तप प्रायश्चित है।

गाहा—अप्पसरूवालंवणभावेण दु सव्वभावपरिहारं ।
 सक्कदि कादुं जीवो, तम्हा झाणं हवे सव्वं ॥८-७-११९॥

अन्वयार्थ—(**जीवो**) जीव (**अप्पसरूवालंवणभावेण दु**) आत्मस्वरूप के आलम्बन के भाव से (**सव्वभावपरिहारं**) समस्त भावों का परिहार (**कादुंसक्कदि**) कर सकता है (**तम्हा**) इसलिये (**झाणं**) ध्यान ही (**सव्वं**) प्रायश्चित आदि सब कुछ (**हवे**) होता है ।

अर्थ—जीव आत्मस्वरूप के आलम्बन के भाव से समस्त भावो का परिहार कर सकता है। इसलिये ध्यान ही प्रायश्चित्त आदि सब कुछ है ।

गाहा—सुहअसुहवयणरयणं, रायादीभाववारणं किच्चा।
अप्पाणं जो झायदि, तस्स दु णियमं हवे णियमा॥८-८-१२०॥

अन्वयार्थ—(जो) जो **(सुहअसुहवयणरयणं)** शुभ और अशुभ वचन की रचना—और **(रायादीभाववारणं)** रागादि भावों का निवारण **(किच्चा)** करके **(अप्पाणं)** आत्मा को **(झायदि)** ध्याता है **(तस्स दु)** उसके तो **(णियमा)** नियम से **(णियमं)** नियम **(हवे)** होता है।

अर्थ—जो शुभ और अशुभ वचन की रचना और रागादि भावों का निवारण करके आत्मा को ध्याता है, उसके तो नियम से (निश्चय से) नियम होता है।

गाहा **कायादीपरदव्वे, थिरभावं परिहरत्तु अप्पाण।**
तस्स हवे तणुसग्गं, जो झायदि णिव्विअप्पेण ॥८-९-१२१॥

अन्वयार्थ --(**कायादीपरदव्वे**) शरीर आदि परद्रव्यो मे (**थिर-भावं**) स्थिर भाव को (**परिहरत्तु**) छोडकर (**जो**) जो (**अप्पाणं**) आत्मा को (**णिव्विअप्पेण**) निर्विकल्प रूप से (**झायदि**) ध्याता है (**तस्स**) उसके (**तणुसग्गं**) कायोत्सर्ग (**हवे**) होता है।

अर्थ—शरीर आदि परद्रव्यो मे स्थिर भाव को छोडकर जो आत्मा को निर्विकल्प रूप से ध्याता है, उसके कायोत्सर्ग होता है।

इदि णिच्छयपायच्छित्ताधियारो अट्ठमो सुदखंधो समत्तो

परमसमाहि अधियारो

परम समाधि का स्वरूप

गाहा—वयणोच्चारणकिरियं, परिचत्ता वीदरायभावेण ।
जो झायदि अप्पाणं, परमसमाही हवे तस्स ॥६-१-१२२॥

अन्वयार्थ—(**वयणोच्चारणकिरियं**) वचनोच्चारण की क्रिया को (**परिचत्ता**) छोड़कर (**जो**) जो (**वीदरायभावेण**) वीतराग भाव से (**अप्पाणं**) आत्मा को (**झायदि**) ध्याता है (**तस्स**) उसके (**परमसमाही**) परम समाधि (**हवे**) होती है।

अर्थ -वचनोच्चारण की क्रिया को छोडकर जो वीतराग भाव से आत्मा को ध्याता है, उसके परम समाधि होती है।

गाहा—**संजमणियमतवेण दु, धम्मज्झाणेण सुक्कझाणेण ।**
जो झायदि अप्पाणं, परमसमाही हवे तस्स ॥६-२-१२३॥

अन्वयार्थ—(**संजमणियमतवेण**) सयम, नियम, तप से (**दु**) और (**धम्मज्झाणेण**) धर्म ध्यान (**सुक्कझाणेण**) शुक्ल ध्यान से (**जो**) जो (**अप्पाणं**) आत्मा को (**झायदि**) ध्याता है (**तस्स**) उसके (**परमसमाही**) परम समाधि (**हवे**) होती है ।

अर्थ—सयम, नियम, तप से और धर्म ध्यान-शुक्ल ध्यान से जो आत्मा को ध्याता है, उसके परम समाधि होती है ।

गाहा— **किं काहदि वणवासो, कायकलेसो विचित्तउववासो।**
अज्झयणमौणपहुदी, समदारहिदस्स समणस्स॥
॥९-३-१२४॥

अन्वयार्थ—(**समदारहिदस्स**) समता से रहित (**समणस्स**) श्रमण को (**वणवासो**) वनवास (**कायकलेसो**) काय क्लेश (**विचित्त-उववासो**) नाना प्रकार के उपवास (**अज्झयणमौणपहुदी**) अध्ययन, मौन आदि (**किं**) क्या लाभ (**काहदि**) कर सकते है।

अर्थ—समता से रहित श्रमण को वनवास, काय क्लेश, नाना प्रकार के उपवास, अध्ययन और मौन क्या (लाभ) कर सकते हैं।

अनुष्टुप—विरदोसव्वसावज्जे, तिगुत्तो पिहिदिंदिओ ।
तस्स सामाइगं ठाई, इदिकेवलिसासणे ॥६-४-१२५॥

अन्वयार्थ —(**सव्वसावज्जे**) समस्त सावद्यो से (**विरदो**) विरत (**तिगुत्तो**) तीन गुप्ति वाला (**पिहिदिंदिओ**) पिहितेन्द्रिय (**तस्स**) उसके (**सामाइगं**) सामायिक (**ठाई**) स्थायी होता है (**इदि**) इस प्रकार (**केवलिसासणे**) केवली के शासन मे कहा है ।

अर्थ—जो समस्त सावद्यो से विरत है, तीन गुप्ति वाला है, पिहितेन्द्रिय (जितेन्द्रिय) है, उसके सामायिक स्थायी होता है, इस प्रकार केवली-शासन मे कहा है ।

समता भावी के सामायिक स्थायी होती है

अनुष्टुप—जो समो सव्वभूदेसु, थावरेसु तसेसु वा ।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥६-५-१२६॥

अन्वयार्थ—(**जो**) जो (**थावरेसु**) स्थावर (**वा**) अथवा (**तसेसु**) त्रस (**सव्वभूदेसु**) समस्त जीवों के प्रति (**समो**) समता भाव रखता है (**तस्स**) उसके (**सामाइगं**) सामायिक (**ठाई**) स्थायी होता है (**इदि**) ऐसा (**केवलिसासणे**) केवली के शासन मे कहा है।

अर्थ—जो स्थावर अथवा त्रस—समस्त जीवों के प्रति समता भाव रखता है, उसके सामायिक स्थायी होता है, ऐसा केवली के शासन में कहा है।

सन्निहित आत्मा के सामायिक स्थायी होती है

अनुष्टुप— **जस्स सण्णिहिदो अप्पा, संजमे णियमे तवे ।**
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे ।।६-६-१२७।।

अन्वयार्थ—(**संजमे**) सयम मे (**णियमे**) नियम मे (**तवे**) तप में (**जस्स**) जिसका (**अप्पा**) आत्मा (**सण्णिहिदो**) निकट रहता है (**तस्स**) उसका (**सामाइगं**) सामायिक (**ठाई**) स्थायी होता है (**इदि**) ऐसा (**केवलिसासणे**) केवली के शासन में कहा है ।

अर्थ—सयम मे, नियम मे और तप मे जिसका आत्मा निकट रहता है, उसका सामायिक स्थायी होता है, ऐसा केवली के शासन मे कहा है ।

अनुष्टुप—जस्स रागो दु दोसो दु, वियडिं ण जणेदि दु ।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥९-७-१२८॥

अन्वयार्थ -(**जस्स**) जिसके (**रागो दु**) राग और (**दोसो दु**) द्वेष रूप (**वियडिं**) विकार (**ण दु जणेदि**) उत्पन्न नही होता (**तस्स**) उसके (**सामाइगं**) सामायिक (**ठाई**) स्थायी होता है (**इदि**) ऐसा (**केवलीसासणे**) केवली के शासन मे कहा है ।

अर्थ—जिसके राग और द्वेषरूप विकार उत्पन्न नही होता, उसके सामायिक स्थायी होता है, ऐसा केवली के शासन में कहा है।

अनुष्टुप—जो दु अट्टं च रुद्दं च, झाणं वज्जेदि णिच्चसा ।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥९-८-१२९॥

अन्वयार्थ—(**जो दु**) जो (**अट्टं च**) आर्त (**रुद्दं च**) और रौद्र (**झाणं**) ध्यान को (**णिच्चसा**) सदा (**वज्जेदि**) छोड़ता है (**तस्स**) उसके (**सामाइगं**) सामायिक (**ठाई**) स्थायी होता है (**इदि**) ऐसा (**केवलिसासणे**) केवली के शासन मे कहा है ।

अर्थ जो आर्त और रौद्र ध्यान को सदा छोडता है, उसके सामायिक स्थायी होता है, ऐसा केवली शासन मे कहा है ।

पुण्य और पाप के त्याग से सामायिक स्थायी होती है

अनुष्टुप—जो दु पुण्णं च पावं च, भावं वज्जेदि णिच्चसा।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥

॥९-९-१३०॥

अन्वयार्थ—(**जो दु**) जो (**पुण्णं च**) पुण्य और (**पावं च**) पाप (**भावं**) भाव को (**णिच्चसा**) सदा (**वज्जेदि**) त्यागता है, (**तस्स**) उसके (**सामाइगं**) सामायिक (**ठाई**) स्थायी होता है (**इदि**) ऐसा (**केवलिसासणे**) केवली के शासन मे कहा है।

अर्थ—जो पुण्य और पाप भाव को सदा त्यागता है, उसके सामायिक स्थायी होता है, ऐसा केवली के शासन में कहा है।

नोकषाय के त्याग से सामायिक स्थायी होती है

अनुष्टुप-- **जो दु हस्सं रदिं सोगं, अरदिं वज्जेदि णिच्चसा ।**
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥
॥९-१०-१३१॥

अन्वयार्थ--(**जो दु**) जो (**हस्सं**) हास्य (**रदिं**) रति (**सोगं**) शोक (**अरदिं**) अरति को (**णिच्चसा**) सदा (**वज्जेदि**) छोड़ता है (**तस्स**) उसके (**सामाइगं**) सामायिक (**ठाई**) स्थायी होता है (**इदि**) ऐसा (**केवलिसासणे**) केवली के शासन मे कहा है ।

अर्थ --जो हास्य, रति, शोक और अरति को सदा त्यागता है, उसके सामायिक स्थायी होता है, ऐसा केवली के शासन मे कहा है ।

नोकषाय के त्याग से सामायिक स्थायी होता है

अनुष्टुप—जो दुगंच्छा भयं वेदं, सव्वं वज्जेदि णिच्चसा ।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे ॥
॥६-११-१३२॥

अन्वयार्थ—(**जो**) जो (**दुगंच्छा**) जुगुप्सा (**भयं**) भय (**सव्वं वेदं**) समस्त वेदों—स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुसक वेद को (**णिच्चसा**) सदा (**वज्जेदि**) छोडता है (**तस्स**) उसके (**सामाइगं**) सामायिक (**ठाई**) स्थायी होता है (**इदि**) ऐसा (**केवलिसासणे**) केवली के शासन में कहा है ।

अर्थ—जो जुगुप्सा, भय और समस्त वेदो को (स्त्रीवेद, पुवेद, नपुसक वेद) सदा छोड़ता है, उसके सामायिक स्थायी होता है, ऐसा केवली के शासन मे कहा है ।

अनुष्टुप—**जो दु धम्मं च सुक्कं च, झाणं झाएदि णिच्चसा ।**
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे ।।
।।६-१२-१३३।।

अन्वयार्थ—(**जो दु**) जो (**धम्मं च**) धर्म (**सुक्कं च**) और शुक्ल (**झाणं**) ध्यान को (**णिच्चसा**) नित्य ही (**झाएदि**) ध्याता है (**तस्स**) उसके (**सामाइगं**) सामायिक (**ठाई**) स्थाई होता है (**इदि**) ऐसा (**केवलिसासणे**) केवली के शासन मे कहा है ।

अर्थ—जो धर्म और शुक्ल ध्यान को नित्य ही ध्याता है, उसके सामायिक स्थायी होता है, ऐसा केवली के शासन मे कहा है ।

इदि परममाहि अधियारो णवमो सुदक्खधो समत्तो

परमभत्ति अधियारो

रत्नत्रय की भक्ति निश्चय निर्वाण-भक्ति है

गाहा—सम्मत्तणाणचरणे, जो भत्ति कुणदि सावगो समणो ।
तस्स दु णिव्वुदिभत्ती, होदि त्ति जिणेहि पण्णत्तं ॥
॥१०-१-१३४॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (सावगो) श्रावक और (समणो) श्रमण (सम्मत्तणाणचरणे) सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र में (भत्ति) भक्ति (कुणदि) करता है (तस्स दु) उसके (णिव्वुदिभत्ती) निर्वाण भक्ति (होदि) होती है (त्ति) ऐसा (जिणेहि) जिनेन्द्र देव ने (पण्णत्तं) कहा है ।

अर्थ—जो श्रावक और श्रमण (मुनि) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मे भक्ति करता है, उसके निर्वाण-भक्ति होती है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है ।

सिद्धों की भक्ति व्यवहार निर्वाण-भक्ति है

गाहा—मोक्खंगदपुरिसाणं, गुणभेदं जाणिवूण तेसिंपि ।
जो कुणदि परमभत्तिं, ववहारणयेण परिकहिदं ॥
॥१०-२-१३५॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (मोक्खंगदपुरिसाणं) मोक्ष मे गये हुए पुरुषो का (गुणभेदं) गुणभेद (जाणिवूण) जानकर (तेसिं पि) उनकी (परमभत्तिं) परम भक्ति (कुणदि) करता है—उसको (ववहारणयेण) व्यवहार नय से (परिकहिदं) (निर्वाणभक्ति) कहा है ।

अर्थ—जो मोक्ष मे गये हुए जीवो का गुण भेद जानकर उनकी परम भक्ति करता है, उसको व्यवहार नय से (निर्वाणभक्ति) कहा है ।

गाहा— मोंक्खपहे अप्पाणं, ठविदूण य कुणदि णिव्वुदी भत्ती ।
तेण दु जीवो पावदि, असहायगुणं णियप्पाणं ॥

॥१०-३-१३६॥

अन्वयार्थ—(**मोंक्खपहे**) मोक्ष-मार्ग मे (**अप्पाणं**) आत्मा को (**ठविदूण य**) स्थापित करके (**णिव्वुदी भत्ती**) निर्वाण-भक्ति (**कुणदि**) करता है (**तेण दु**) उससे (**जीवो**) जीव (**असहायगुणं**) असहाय गुण वाले (**णियप्पाणं**) निजात्मा को (**पावदि**) प्राप्त करता है।

अर्थ - मोक्ष-मार्ग मे आत्मा को स्थापित करके जो निर्वाण-भक्ति करता है, उससे जीव असहाय गुण वाले निजात्मा को प्राप्त करता है।

गाहा—**रायादीपरिहारे, अप्पाणं जो दु जुञ्जदे साहू ।**
सो जोगभत्तिजुत्तो, इदरस्स य किह हवे जोगो ॥

॥१०-४-१३७॥

अन्वयार्थ—(**जो दु साहू**) जो साधु (**अप्पाणं**) आत्मा को (**रायादीपरिहारे**) रागादि के परिहार मे (**जुञ्जदे**) लगाता है (**सो**) वह (**जोगभत्तिजुत्तो**) योग-भक्ति से युक्त है (**इदरस्स य**) अन्य को (**जोगो**) योग (**किह**) किस प्रकार (**हवे**) हो सकता है ।

अर्थ—जो साधु आत्मा को रागादि के परिहार (त्याग) मे लगाता है, वह योग-भक्ति से युक्त है । अन्य को योग किस प्रकार हो सकता है ।

गाहा –**सव्ववियप्पाभावे, अप्पाणं जो दु जुञ्जदे साहू ।**
सो जोगभत्तिजुत्तो, इदरस्स य किह हवे जोगो ॥ कहँ
॥१०-५-१३८॥

अन्वयार्थ—(**जो दु**) जो (**साहू**) साधु (**अप्पाणं**) आत्मा को (**सव्व-वियप्पाभावे**) समस्त विकल्पों के अभाव में (**जुञ्जदे**) लगाता है (**सो**) वह (**जोगभत्तिजुत्तो**) योग—भक्ति से युक्त है (**इदरस्स य**) अन्य को (**जोगो**) योग (**किह**) किस प्रकार (**हवे**) हो सकता है।

अर्थ—जो साधु आत्मा को समस्त विकल्पों के अभाव में लगाता है, वह योग—भक्ति से युक्त है। अन्य को योग किस प्रकार हो सकता है।

निश्चय परम योग का स्वरूप

गाहा—**विवरीदाभिणिवेसं, परिचत्ता जेण्हकहिदतच्चेसु ।**
जो जुञ्जदि अप्पाणं, णियभावो सो हवे जोगो ।।
।।१०-६-१३९।।

अन्वयार्थ—(**जो**) जो (**विवरीदाभिणिवेसं**) विपरीत अभिनिवेश का (**परिचत्ता**) परित्याग करके (**जेण्हकहिदतच्चेसु**) जैन कथित तत्त्वो मे (**अप्पाणं**) आत्मा को (**जुञ्जदि**) लगाता है—उसका (**सो णियभावो**) वह निजभाव (**जोगो**) योग (**हवे**) होता है ।

अर्थ—जो विपरीत अभिनिवेश का परित्याग करके जैन (गणधर देव द्वारा) कथित तत्त्वो मे आत्मा को लगाता है, उसका वह निजभाव योग होता है ।

गाहा—उसहादिजिणवरिंदा, एवं काऊण जोगवरभत्ति।
णिव्वुदिसुहमावण्णा, तम्हा धरु जोगवरभत्ति ॥१०-७-१४०॥

अन्वयार्थ—(**उसहादिजिणवरिंदा**) ऋषभ आदि जिनेन्द्रदेव (**एवं**) इस प्रकार (**जोगवरभत्ति**) उत्तम योग-भक्ति (**काऊण**) करके (**णिव्वुदिसुहं**) निर्वाण-सुख को (**आवण्णा**) प्राप्त हुए (**तम्हा**) इसलिये (**जोगवरभत्ति**) उत्तम योग-भक्ति को (**धरु**) धारण करो।

अर्थ—ऋषभ आदि जिनेन्द्रदेव इस प्रकार उत्तम योग-भक्ति करके निर्वाण-सुख को प्राप्त हुए। इसलिये (तुम) उत्तम योग-भक्ति को धारण करो।

इदि परमभत्ति अधियारो दसमो सुदखंधो समत्तो

णिच्छय परमावस्सयाधियारो

स्ववश निश्चयावश्यक कर्म है

गाहा—जो ण हवदि अण्णवसो, तस्स दु कम्मं भणंति आवासं ।
कम्मविणासणजोगो, णिव्वुदिमग्गो त्ति णिज्जुत्ती ॥
॥११-१-१४१॥

अन्वयार्थ—(जो) जो (अण्णवसो) अन्य के वश (ण) नही (हवदि) होता है (तस्स दु) उसे (आवासं कम्मं) आवश्यक कर्म (भणंति) कहते हैं (कम्मविणासणजोगो) कर्मों का विनाश करने वाला योग (णिव्वुदिमग्गो) निर्वाण का मार्ग है (त्ति) ऐसी (णिज्जुत्ती) व्युत्पत्ति है ।

अर्थ—जो अन्य के वश नही होता है, उसे आवश्यक कर्म कहते है । कर्मों का विनाश करने वाला योग निर्वाण का मार्ग है, ऐसी व्युत्पत्ति है ।

**गाहा—ण वसो अवसो अवसस्स कम्म वावस्सयं ति बोधव्वं ।
जुत्ति त्ति उवाअं ति य, णिरवयवो होदि णिज्जुत्ती ॥**
॥११-२-१४२॥

अन्वयार्थ— (**ण वसो**) जो अन्य के वश नही है, वह (**अवसो**) अवश है (**वा**) तथा (**अवसस्स**) अवश का (**कम्म**) कर्म (**आवस्सयं**) आवश्यक है (**त्ति**) ऐसा (**बोधव्वं**) जानना चाहिये (**त्ति**) यह (**जुत्ति**) युक्ति है (**ति**) यह (**उवाअं य**) उपाय है (**णिरवयवो**) निरवयव-अशरीरी (**होदि**) होता है—ऐसी (**णिज्जुत्ती**) निरुक्ति-व्युत्पत्ति है ।

अर्थ- जो अन्य के वश नही है, वह अवश है तथा अवश का कर्म आवश्यक है, ऐसा जानना चाहिये । यह युक्ति और उपाय है, जिससे निरवयव (अशरीरी) होता है । ऐसी निरुक्ति (व्युत्पत्ति) है ।

वा—अथवा, तथा, निश्चय, अवधारण—पा०स०म०, पृ० ७५४.

अशुभ भाव वाले को आवश्यक कर्म नही होता

गाहा— **वट्टदि जो सो समणो, अण्णवसो होदि असुहभावेण।**
तम्हा तस्स दु कम्मं, आवस्सयलक्खणं ण हवे ॥
॥११-३-१४३॥

अन्वयार्थ— (**जो**) जो (**समणो**) श्रमण (**असुहभावेण**) अशुभ भाव सहित (**वट्टदि**) वर्तता है (**सो**) वह (**अण्णवसो**) अन्य के वश (**होदि**) है (**तम्हा**) इसलिए (**तस्स दु**) उसको (**आवस्सयलक्खणं**) आवश्यक लक्षण वाला (**कम्मं**) कर्म (**ण हवे**) नही होता।

अर्थ - जो श्रमण (**मुनि**) अशुभ भाव सहित वर्तता है, वह अन्य के वश है। इसलिये उसको आवश्यक लक्षण वाला कर्म नही है।

गाहा—**जो चरदि संजदो खलु, सुहभावे सो हवेदि अण्णवसो।**
तम्हा तस्स दु कम्मं, आवस्सयलक्खणं ण हवे॥
॥११-४-१४४॥

अन्वयार्थ—(**जो संजदो**) जो संयत (**सुहभावे**) शुभ भाव में (**चरदि**) वर्तता है (**सो**) वह (**खलु**) वस्तुतः (**अण्णवसो**) अन्य के वश (**हवेदि**) है (**तम्हा**) इसलिये (**तस्सदु**) उसको (**आवस्सयलक्खणं**) आवश्यक लक्षण वाला (**कम्मं**) कर्म (**ण हवे**) नही है।

अर्थ—जो संयत (मुनि) शुभ भाव मे वर्तता है, वह वस्तुतः अन्य के वश है। इसलिये उसको आवश्यक लक्षण वाला कर्म नही है।

गाहा - दव्वगु णपज्जयाणं, चित्तं जो कुणदि सो वि अण्णवसो ।
मोहांधयारववगदसमणा कहयंति एरिसयं ॥
॥११-५-१४५॥

अन्वयार्थ --**(जो)** जो **(दव्वगुणपज्जयाणं)** द्रव्य, गुण पर्यायों मे **(चित्तं)** मन **(कुणदि)** लगाता है **(सो वि)** वह भी **(अण्णवसो)** अन्य के वश मे है **(एरिसयं)** ऐसा **(मोहांधयारववगदसमणा)** मोहांधकार से रहित श्रमण **(कहयंति)** कहते हैं ।

अर्थ -जो द्रव्य,गुण, पर्यायो मे मन लगाता है, वह भी अन्य के वश मे है, ऐसा मोहांधकार से रहित श्रमण कहते हैं ।

गाहा—परिचत्ता परभावं, अप्पाणं झादि णिम्मलसहावं ।
अप्पवसो सो होदि हु, तस्स दु कम्मं भणंति आवासं ॥
॥११-६-१४६॥

अन्वयार्थ—जो (परभावं) परभाव को (परिचत्ता) छोडकर (णिम्मलसहावं) निर्मल स्वभाव वाले (अप्पाणं) आत्मा को (झादि) ध्याता है (सो) वह (हु) वास्तव में (अप्पवसो) आत्मवश (होदि) है (दु) और (तस्स) उसका (आवासं) आवश्यक (कम्मं) कर्म—होता है, ऐसा (भणंति) कहते हैं ।

अर्थ—(जो) परभाव को छोडकर निर्मल स्वभाव वाले आत्मा को ध्याता है, वह वास्तव में आत्मवश है और उसका आवश्यक कर्म होता है, ऐसा (जिनेन्द्र) कहते है ।

गाहा—आवासं जदि इच्छसि, अप्पसहावेसु कुणदि थिरभावं ।
तेण दु सामण्णगुणं, संपुण्णं होदि जीवस्स ॥
॥११-७-१४७॥

अन्वयार्थ—**(जदि)** यदि तू **(आवासं)** आवश्यक को **(इच्छसि)** चाहता है—तो तू **(अप्पसहावेसु)** आत्म स्वभावों मे **(थिरभावं)** स्थिर भाव **(कुणदि)** करता है **(तेण दु)** उससे **(जीवस्स)** जीव का **(सामण्णगुणं)** सामायिक गुण **(संपुण्णं)** सम्पूर्ण **(होदि)** होता है।

अर्थ—यदि तू आवश्यक को चाहता है तो तू आत्म स्वभावो मे स्थिर भाव करना है। उससे जीव का सामायिक गुण सम्पूर्ण होता है।

गाहा —**आवासएण हीणो, पब्भट्ठो होदि चरणदो समणो ।**
पुव्वुत्तकमेण पुणो, तम्हा आवासयं कुज्जा ॥
॥११-८-१४८॥

अन्वयार्थ —(**आवासएण**) आवश्यक से (**होणो**) हीन (**समणो**) श्रमण (**चरणदो**) चारित्र से (**पब्भट्ठो**) भ्रष्ट (**होदि**) होता है (**तम्हा**) इसलिये (**पुणो**) पुनः (**पुव्वुत्तकमेण**) पूर्वोक्त क्रम से (**आवासयं**) आवश्यक (**कुज्जा**) करना चाहिये ।

अर्थ —आवश्यक से हीन श्रमण चारित्र से भ्रष्ट होता है । इसलिये पुन. पूर्वोक्त क्रम से आवश्यक करना चाहिये ।

आवश्यक से युक्त श्रमण अन्तरात्मा है

गाहा—**आवासएण जुत्तो, समणो सो होदि अंतरंगप्पा।**
आवासयपरिहीणो, समणो सो होदि बहिरप्पा॥

॥११-६-१४६॥

अन्वयार्थ- (**आवासएण**) आवश्यक से (**जुत्तो**) युक्त (**समणो**) श्रमण (**सो**) वह (**अंतरंगप्पा**) अन्तरात्मा (**होदि**) होता है (**आवासय-परिहीणो**) आवश्यक से रहित (**समणो**) श्रमण (**सो**) वह (**बहिरप्पा**) बहिरात्मा (**होदि**) होता है।

अर्थ - आवश्यक से युक्त श्रमण—वह अन्तरात्मा होता है। आवश्यक मे रहित श्रमण—वह बहिरात्मा होता है।

अन्तः बाह्य जल्पों से रहित अन्तरात्मा होता है

गाहा—अंतरबाहिरजप्पे, जो वट्टदि सो हवेदि बहिरप्पा।
जप्पेसु जो ण वट्टदि, सो वुच्चदि अंतरंगप्पा।।
।।११-१०-१५०।।

अन्वयार्थ—(**जो**) जो (**अंतरबाहिरजप्पे**) अन्तः और बाह्य जल्प मे (**वट्टदि**) वर्तता है (**सो**) वह (**बहिरप्पा**) बहिरात्मा (**हवेदि**) है (**जो**) जो (**जप्पेसु**) अन्तः, बाह्य जल्पों मे (**ण**) नही (**वट्टदि**) वर्तता (**सो**) वह (**अंतरंगप्पा**) अन्तरात्मा (**वुच्चदि**) कहलाता है।

अर्थ - जो अन्तः बाह्य जल्पो मे वर्तता है, वह बहिरात्मा है। जो अन्तः बाह्य जल्पो मे नही वर्तता, वह अन्तरात्मा कहलाता है।

गाहा—**जो धम्मसुक्कझाणम्हि परिणदो सो वि अंतरंगप्पा ।**
झाणविहीणो समणो, बहिरप्पा इदि विजाणीहि ॥
॥११-११-१५१॥

अन्वयार्थ—(**जो**) जो (**धम्मसुक्कझाणम्हि**) धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान में (**परिणदो**) परिणत है (**सो वि**) वह भी (**अंतरंगप्पा**) अन्तरात्मा है (**झाणविहीणो**) ध्यान से रहित (**समणो**) श्रमण (**बहिरप्पा**) बहिरात्मा है (**इदि**) यह (**विजाणीहि**) जानो ।

अर्थ—जो धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान मे परिणत है, वह भी अन्तरात्मा है । ध्यान से रहित श्रमण बहिरात्मा है, यह जानो ।

गाहा—पडिकमणपहुदिकिरियं, कुव्वंतो णिच्छयस्स चारित्तं।
तेण दु विराग चरिदे, समणो अब्भुट्ठिदो होदि ॥
॥११-१२-१५२॥

अन्वयार्थ—(**पडिकमणपहुदिकिरियं**) प्रतिक्रमणादि क्रिया को (**कुव्वंतो**) करता हुआ (**समणो**) श्रमण (**णिच्छयस्सचारित्तं**) निश्चय चारित्र को प्राप्त होता है (**तेण दु**) उससे—वह (**विराग-चरिदे**) वीतराग चारित्र में (**अब्भुट्ठिदो**) आरूढ (**होदि**) होता है।

अर्थ—प्रतिक्रमणादि क्रिया को करता हुआ श्रमण निश्चय चारित्र को प्राप्त होता है। उससे वह वीतराग चारित्र मे आरूढ होता है।

गाहा—**वयणमयं पडिकमणं, वयणमयं पच्चक्खाण णियमं च ।**
आलोयण वयणमयं, तं सव्वं जाण सज्झाउं ॥
॥११-१३-१५३॥

अन्वयार्थ— (**वयणमयं पडिकमणं**) वचनात्मक प्रतिक्रमण (**वयणमयं पच्चक्खाण णियमं च**) वचनात्मक प्रत्याख्यान और नियम (**वयणमयं आलोयण**) वचनात्मक आलोचना (**तं**) उस (**सव्वं**) सबको—तू (**सज्झाउं**) स्वाध्याय (**जाण**) जान ।

अर्थ—वचनात्मक प्रतिक्रमण, वचनात्मक प्रत्याख्यान और नियम, वचनात्मक आलोचना—उस सबको तू स्वाध्याय जान ।

गाहा—जदि सक्कदि कादुं जे, पडिकमणादिं करेंज्ज झाणमयं ।
सत्तिविहीणो जा जदि, सद्दहणं चेव कायव्वं ॥ ६
॥११-१४-१५४॥

अन्वयार्थ—(जदि) यदि- तू (जे) वास्तव मे (कादुं सक्कदि) कर सकता है तो (झाणमयं) ध्यानमय (पडिकमणादिं) प्रतिक्रमणादि (करेंज्ज) करना चाहिये (जदि) यदि (सत्तिविहीणो) असमर्थ है (जा) तब तक (सद्दहणं चेव) श्रद्धान ही (कायव्वं) करना चाहिये ।

अर्थ—यदि तू वास्तव मे कर सकता है तो ध्यानमय प्रतिक्रमणादि करना चाहिये । यदि शक्तिविहीन (असमर्थ) है, तब तक श्रद्धान ही करना चाहिये ।

—जे—पादपूर्ति या अवधारण में प्रयुक्त होने वाला अव्यय

—पा०स०म०, पृ० ३६१

गाहा—जिणकहियपरमसुत्ते, पडिकमणादिय परीक्खदूण फुडं ।
मोणव्वदेण जोई, णियकज्जं साहए णिच्चं ॥
॥११-१५-१५५॥

अन्वयार्थ—(**जिणकहियपरमसुत्ते**) जिनेन्द्र द्वारा प्ररूपित परम-सूत्र से (**पडिकमणादिय**) प्रतिक्रमणादि की (**फुडं**) स्पष्ट-भली प्रकार (**परीक्खदूण**) परीक्षा करके (**जोई**) योगी को (**मोणव्वदेण**) मौनव्रत धारण करके (**णियकज्जं**) अपना कार्य (**णिच्चं**) सदा (**साहए**) साधना चाहिये।

अर्थ—जिनेन्द्र द्वारा प्ररूपित परमसूत्र से प्रतिक्रमणादि की भली प्रकार परीक्षा करके योगी को मौनव्रत धारण करके अपना कार्य सदा साधना चाहिये।

गाहा—णाणा जीवा णाणा कम्मं णाणाविहं हवे लद्धी ।
तम्हा वयणविवादं, सगपरसमएहि वज्जेज्जो ॥
॥११-१६-१५६॥

अन्वयार्थ—(णाणा जीवा) जीव नाना प्रकार के है (णाणा कम्मं) कर्म नाना प्रकार के हैं (लद्धी) लब्धियाँ (णाणाविहं) नाना प्रकार की (हवे) हैं (तम्हा) इसलिये (सगपरसमएहि) सार्धमियों और परर्धामियो के साथ (वयणविवादं) वचन-विवाद (वज्जेज्जो) छोड़ देना चाहिये ।

अर्थ—जीव नाना प्रकार के है, कर्म नाना प्रकार के हैं और लब्धियाँ नाना प्रकार की है । इसलिये सार्धमियों और परर्धामियों के साथ वचन-विवाद छोड़ देना चाहिये ।

गाहा—लद्धूणं णिहि एॅक्को, तस्स फलं अणुहवेदि सुजणत्ते ।
तह णाणी णाणणिहिं, भुञ्जेदि चइत्तु परतत्तिं ॥
॥११-१७-१५७॥

अन्वयार्थ—(**एॅक्को**) जैसे कोई व्यक्ति (**णिहि**) निधि को (**लद्धूणं**) प्राप्त करके (**तस्स**) उस निधि का (**फलं**) फल (**सुजणत्ते**) अपने देश में -एकान्त मे (**अणुहवेदि**) अनुभव करता है—भोगता है (**तह**) उसी प्रकार (**णाणी**) ज्ञानी (**परतत्तिं**) पर की चिन्ता (**चइत्तु**) छोडकर (**णाणणिहिं**) ज्ञाननिधि को (**भुञ्जेदि**) भोगता है ।

अर्थ—जैसे कोई व्यक्ति निधि को प्राप्त करके उस निधि का फल अपने देश मै (एकान्त मे) अनुभव करता है (भोगता है), उसी प्रकार ज्ञानी पर की चिन्ता छोडकर ज्ञाननिधि को भोगता है ।

तत्ति—चिन्ता, विचार, वार्ता, कार्य, प्रयोजन

—पा०स०म०, पृ० ४२७

गाहा—सव्वे पुराणपुरिसा, एवं आवासयं य काऊण । ॐ
अपमत्तपहुदिठाणं, पडिवज्ज य केवली जादा ॥
॥११-१८-१५८॥

अन्वयार्थ—(**सव्वे**) समस्त (**पुराणपुरिसा**) पुराण पुरुष (**एवं**) इस प्रकार (**आवासयं य**) आवश्यक को (**काऊण**) करके (**य**) और (**अपमत्तपहुदिठाणं**) अप्रमत्तादि गुणस्थानो को (**पडिवज्ज**) प्राप्त करके (**केवली**) केवली (**जादा**) हो गये ।

अर्थ—समस्त पुराण पुरुष इस प्रकार आवश्यक को करके और अप्रमत्तादि गुणस्थानो को प्राप्त करके केवली हो गये।

इदि णिच्छय परमावस्सयाधियारो ऐक्कारसमोसुदक्खंधो समत्तो

नयविवक्षा से केवलज्ञानी का स्व-पर प्रकाशकत्व

गाहा—**जाणदि पस्सदि सव्वं, ववहारणयेण केवली भगवं।**
केवलणाणी जाणदि, पस्सदि णियमेण अप्पाणं ॥
॥१२-१-१५९॥

अन्वयार्थ—(**ववहारणयेण**) व्यवहार नय से (**केवली भगवं**) केवली भगवान (**सव्वं**) सबको (**जाणदि**) जानते है—और (**पस्सदि**) देखते है (**णियमेण**) निश्चय से (**केवलणाणी**) केवलज्ञानी (**अप्पाणं**) अपनी आत्मा को (**जाणदि**) जानते है—और (**पस्सदि**) देखते है।

अर्थ—व्यवहार नय से केवली भगवान सबको जानते और देखते है। निश्चय नय से केवलज्ञानी अपनी आत्मा को जानते और देखते है।

गाहा—जुगवं वट्टदि णाणं, केवलणाणिस्स दंसणं च तहा।
विणयरपयासतावं, जह वट्टदि तह मुणेदव्वं ॥
॥१२-२-१६०॥

अन्वयार्थ—(केवलणाणिस्स) केवलज्ञानी के (णाणं) ज्ञान (तहा च) तथा (दंसणं) दर्शन (जुगवं) युगपत् (वट्टदि) होते हैं (जह) जिस प्रकार (विणयरपयासतावं) सूर्य का प्रकाश और ताप—युगपत् (वट्टदि) वर्तते हैं (तह) उसी प्रकार (मुणेदव्वं) जानना चाहिये।

अर्थ—केवलज्ञानी के ज्ञान तथा दर्शन युगपत् होते हैं। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश और ताप (युगपत्) वर्तते हैं, उसी प्रकार जानना चाहिये।

एकान्त से न ज्ञान परप्रकाशक है, न दर्शन स्वप्रकाशक है

गाहा--**णाणं परप्पयासं, दिट्ठी अप्पप्पयासया चेव ।**
अप्पा सपरपयासो, होदि त्ति हि मण्णसे जदि हि ॥
॥१२-३-१६१॥

अन्वयार्थ—(**णाणं**) ज्ञान (**परप्पयासं**) परप्रकाशक है (**च**) और (**दिट्ठी**) दर्शन (**अप्पप्पयासया एव**) आत्म प्रकाशक ही है—अत (**अप्पा**) आत्मा (**सपरपयासो**) स्व-पर प्रकाशक (**होदि**) है (**त्ति हि**) ऐसा (**जदि हि**) यदि—तू (**मण्णसे**) मानता है (तो ठीक नही है)।

अर्थ—ज्ञान परप्रकाशक है, दर्शन आत्म प्रकाशक है, अत: आत्मा स्व-परप्रकाशक है—यदि तू ऐसा मानता है (तो ठीक नही है)।

गाहा—णाणं परप्पयासं, तइया णाणेण दंसणं भिण्णं ।
ण हवदि परदव्वगदं, दंसणमिदि वण्णिदं तम्हा ॥

॥१२-४-१६२॥

अन्वयार्थ—यदि (**णाणं**) ज्ञान (**परप्पयासं**) केवल परप्रकाशक ही हो (**तइया**) तब तो (**णाणेण**) ज्ञान से (**दंसणं**) दर्शन (**भिण्णं**) भिन्न—सिद्ध होगा (**तम्हा**) क्योंकि (**दंसणं**) दर्शन (**परदव्वगदं**) परद्रव्यगत—परप्रकाशक (**ण हवदि**) नही है (**इदि**) ऐसा-पहले (**वण्णिदं**) वर्णन किया गया है—कहा गया है ।

अर्थ—(यदि) ज्ञान (केवल) परप्रकाशक ही हो, तब तो ज्ञान से दर्शन भिन्न सिद्ध होगा, क्योकि दर्शन परप्रकाश नही है, ऐसा पहले (पूर्व गाथा में) कहा गया है ।

गाहा—**अप्पा परप्पयासो, तइया अप्पेण दंसणं भिण्णं ।**
ण हवदि परदव्वगदं, दंसणमिदि वण्णिदं तम्हा ॥

॥१२-५-१६३॥

अन्वयार्थ—यदि (**अप्पा**) आत्मा (**परप्पयासो**) केवल पर-प्रकाशक हो (**तइया**) तब तो (**अप्पेण**) आत्मा से (**दंसणं**) दर्शन (**भिण्णं**) भिन्न सिद्ध होगा (**तम्हा**) क्योंकि (**दंसणं**) दर्शन (**पर-दव्वगदं**) परद्रव्यगत--पर प्रकाशक (**ण हवदि**) नही है (**इदि**) ऐसा– पहले (**वण्णिदं**) वर्णन किया गया है--कहा गया है।

अर्थ—(यदि) आत्मा (केवल) पर प्रकाशक ही हो, **तब** तो आत्मा से दर्शन भिन्न सिद्ध होगा, क्योंकि दर्शन पर प्रकाशक नही है, ऐसा (पहले) कहा गया है।

उग्गाहा—णाणं परप्पयासं, ववहारणयेण दंसणं तम्हा ।
अप्पा परप्पयासो, ववहारणयेण दंसणं तम्हा ॥
॥१२-६-१६४॥

अन्वयार्थ—(**ववहारणयेण**) व्यवहार नय से (**णाणं**) ज्ञान (**परप्पयासं**) पर प्रकाशक है (**तम्हा**) इसलिये (**दंसणं**) दर्शन-पर प्रकाशक है (**ववहारणयेण**) व्यवहार नय से (**अप्पा**) आत्मा (**परप्पयासो**) पर प्रकाशक है (**तम्हा**) इसलिये (**दंसणं**) दर्शन पर प्रकाशक है ।

अर्थ—व्यवहार नय से ज्ञान पर प्रकाशक है, इसलिये दर्शन पर प्रकाशक है । व्यवहार नय मे आत्मा पर प्रकाशक है, इसलिये दर्शन पर प्रकाशक है ।

उग्गाहा—णाणं अप्पपयासं, णिच्छयणयेण दंसणं तम्हा ।
अप्पा अप्पपयासो, णिच्छयणयेण दंसणं तम्हा ।।
।।१२-७-१६५।।

अन्वयार्थ—(**णाणं**) ज्ञान (**णिच्छयणयेण**) निश्चय नय से (**अप्पपयासं**) आत्म प्रकाशक है (**तम्हा**) इसलिये (**दंसणं**) दर्शन—आत्म प्रकाशक है (**णिच्छयणयेण**) निश्चय नय से (**अप्पा**) आत्मा (**अप्पपयासो**) आत्म प्रकाशक है (**तम्हा**) इसलिये (**दंसणं**) दर्शन—आत्म प्रकाशक है ।

अर्थ—निश्चय नय से ज्ञान आत्म प्रकाशक है, इसलिये दर्शन आत्म प्रकाशक है । निश्चय नय से आत्मा आत्म-प्रकाशक है, इसलिये दर्शन आत्म प्रकाशक है ।

गाहा— अप्पसरूवं पेच्छदि, लोयालोयं ण केवली भगवं ।
जदि कोइ भणदि एवं, तस्स य किं दूसणं होदि ॥
॥१२-८-१६६॥

अन्वयार्थ—(**केवली भगवं**) केवली भगवान (**अप्पसरूवं**) आत्म स्वरूप को (**पेच्छदि**) देखते है (**लोयालोयं ण**) लोकालोक को नहीं (**जदि**) यदि (**एवं**) ऐसा (**कोइ**) कोई (**भणदि**) कहता है (**तस्स य**) उसका (**किं दूसणं**) क्या दोष (**होदि**) है ।

अर्थ—केवली भगवान आत्म स्वरूप को देखते है, लोकालोक को नही, यदि कोई ऐसा कहता है, तो उसका क्या दोष है ।

गाहा—मुत्तममुत्तं दव्वं, चेदणमिदरं सगं च सव्वं च।
पेच्छंतस्स दु णाणं, पच्चक्खमणिंदियं होदि ॥

॥१२-६-१६७॥

अन्वयार्थ—(**मुत्तं**) मूर्त (**अमुत्तं**) अमूर्त (**चेदणं**) चेतन—और (**इदरं**) अचेतन (**दव्वं**) द्रव्य को (**सगं च**) स्व को और (**सव्वं च**) समस्त को (**पेच्छंतस्स दु**) देखने-जानने वाले का (**णाणं**) ज्ञान (**पच्चक्खं**) प्रत्यक्ष—और (**अणिंदियं**) अतीन्द्रिय (**होदि**) है।

अर्थ—मूर्त-अमूर्त, चेतन और अचेतन द्रव्य को, स्व को और समस्त को देखने (जानने) वाले का ज्ञान प्रत्यक्ष और अतीन्द्रिय है।

इन्द्रिय ज्ञान परोक्ष ज्ञान है

गाहा—पुव्वुत्तसयलदव्वं, णाणागुणपज्जएण संजुत्तं ।
जो ण य पेच्छदि सम्मं, परोक्खदिट्ठी हवे तस्स ॥

॥१२-१०-१६८॥

अन्वयार्थ—(**णाणागुणपज्जएण संजुत्तं**) नाना गुण और पर्यायों से युक्त (**पुव्वुत्तसयलदव्वं**) पूर्वोक्त समस्त द्रव्यो को (**जो**) जो (**सम्मं**) सम्यक् प्रकार (**ण य पेच्छदि**) नही देखता (**तस्स**) उसे (**परोक्खदिट्ठी**) परोक्ष दर्शन (**हवे**) है।

अर्थ—नाना गुण और पर्यायो से युक्त पूर्वोक्त समस्त द्रव्यो को जो सम्यक् प्रकार नही देखता, उसे परोक्ष दर्शन है।

व्यवहार नय की अपेक्षा केवली लोकालोक को जानते है

**गाहा—लोयालोयं जाणदि, अप्पाणं णेव केवली भगवं।
जदि कोइ भणदि एवं, तस्स य किं दूसणं होदि॥
॥१२-११-१६६॥**

अन्वयार्थ—(**केवली भगवं**) केवली भगवान (**लोयालोयं**) लोका-लोक को (**जाणदि**) जानता है (**णेव अप्पाणं**) आत्मा को नही (**जदि**) यदि—व्यवहार नय से (**कोइ**) कोई (**एवं**) इस प्रकार (**भणदि**) कहता है—तो (**तस्स य**) उसका (**किं**) क्या (**दूसणं**) दोष (**होदि**) है।

अर्थ—केवली भगवान लोकालोक को जानते है, अपनी आत्मा (शुद्धात्मास्वरूप) को नही, यदि (व्यवहार नय से) कोई इस प्रकार कहता है तो उसका क्या दोष है।

गाहा—णाणं जीवसरूवं, तम्हा जाणेदि अप्पगं अप्पा। ६
अप्पाणं ण विजाणदि, अप्पादो होदि वदिरित्तं ॥
॥१२-१२-१७०॥

अन्वयार्थ—(**णाणं**) ज्ञान (**जीवसरूवं**) जीव का स्वरूप है (**तम्हा**) इसलिये (**अप्पा**) आत्मा (**अप्पगं**) अपनी आत्मा को (**जाणेदि**) जानता है—यदि ज्ञान (**अप्पाणं**) अपनी आत्मा को (**ण विजाणदि**) नही जाने तो– वह (**अप्पादो**) आत्मा से (**वदिरित्तं**) भिन्न (**होदि**) हो जाय (सिद्ध हो जायगा)।

अर्थ—ज्ञान जीव का स्वरूप है, इसलिये आत्मा अपनी आत्मा को जानता है। (यदि ज्ञान) अपनी आत्मा को नही जाने (तो वह) आत्मा से भिन्न सिद्ध हो जायगा।

गाहा—अप्पाणं विणु णाणं, णाणं विणु अप्पगो ण संदेहो ।
तम्हा सपरपयासं, णाणं तह दंसणं होदि ॥
॥१२-१३-१७१॥

अन्वयार्थ—(**अप्पाणं**) आत्मा को (**णाणं**) ज्ञान (**विणु**) जानो और (**णाणं**) ज्ञान को (**अप्पगो**) आत्मा (**विणु**) जानो (**संदेहो ण**) इसमे सन्देह नही है (**तम्हा**) इसलिये (**णाणं**) ज्ञान (**तह**) तथा (**दंसणं**) दर्शन (**सपरपयासं**) स्व पर प्रकाशक (**होदि**) है ।

अर्थ—आत्मा को ज्ञान जानो और ज्ञान को आत्मा जानो, इसमें सन्देह नही है । इसलिये ज्ञान तथा दर्शन स्व पर प्रकाशक है ।

केवली का ज्ञान ईहापूर्वक नही होता

गाहा—जाणंतो पस्संतो, ईहापुव्वं ण होदि केवलिणो ।
केवलिणाणी तम्हा, तेण दु सोबंधगो भणिदो ॥
॥१२-१४-१७२॥

अन्वयार्थ—(**जाणंतो**) जानते—और (**पस्संतो**) देखते हुए (**केवलिणो**) केवली को (**ईहापुव्वं**) ईहापूर्वक-वर्तन (**ण होदि**) नहीं होता (**तम्हा**) इसलिये—वह (**केवलणाणी**) केवल ज्ञानी कहलाता है (**दु**) और (**तेण**) इसलिये (**सो**) वह (**अबंधगो**) अबधक (**भणिदो**) कहा जाता है।

अर्थ—जानते और देखते हुए केवली को ईहापूर्वक (वर्तन) नही होता। इसलिये वह केवलज्ञानी कहलाता है और इसलिये वह अबधक कहा जाता है।

गाहा—**परिणामपुव्ववयणं, जीवस्स य बंधकारणं होदि।**
परिणामरहिववयणं, तम्हा णाणिस्स ण हि बंधो ॥

॥१२-१५-१७३॥

अन्वयार्थ—(**परिणामपुव्ववयणं**) परिणामपूर्वक वचन (**जीवस्स य**) जीव को (**बंधकारणं**) बन्ध का कारण (**होदि**) होता है (**णाणिस्स**) ज्ञानी के (**परिणामरहिववयणं**) वचन परिणाम रहित होते है (**तम्हा**) इसलिये—उसे (**हि**) निश्चय से (**बंधो ण**) बन्ध नही है।

अर्थ—परिणामपूर्वक वचन जीव को बन्ध का कारण होता है। ज्ञानी के वचन परिणाम रहित होते है। इसलिये उसे निश्चय से बन्ध नही है।

गाहा—ईहापुव्वं वयणं, जीवस्स य बंधकारणं होदि ।
ईहारहिवं वयणं, तम्हा णाणिस्स ण हि बंधो ॥१२-१६-१७४॥

अन्वयार्थ—(ईहापुव्वं वयणं) ईहापूर्वक वचन (जीवस्स य) जीव को (बंधकारणं) बन्ध का कारण (होवि) होता है (णाणिस्स) ज्ञानी के (ईहारहिवं वयणं) वचन ईहारहित होते हैं (तम्हा) इसलिये--उसे (हि) निश्चय से (बंधो ण) बन्ध नहीं है ।

अर्थ—ईहापूर्वक वचन जीव को बन्ध का कारण होता है । ज्ञानी के वचन ईहारहित होते हैं । इसलिये उसे निश्चय से बध नहीं है ।

गाहा—ठाणणिसेज्जविहारा, ईहापुव्वं ण होदि केवलिणो।
तम्हा ण होदि बंधो, साकट्ठं मोहणीयस्स॥
॥१२-१७-१७५॥

अन्वयार्थ—(**केवलिणो**) केवली के (**ठाणणिसेज्जविहारा**) खड़े रहना, बैठना, बिहार (**ईहापुव्वं**) ईहापूर्वक (**ण होदि**) नही होता (**मोहणीयस्स**) मोहनीय के वश हुए जीव को (**साकट्ठं**) इन्द्रिय-विषय रूप प्रयोजन के कारण-बन्ध होता है।

अर्थ—केवली के खडे रहना, बैठना, बिहार करना ईहापूर्वक नहीं होते। इसलिये उन्हे बन्ध नही होता। मोहनीय के वश हुए जीव को इन्द्रिय-विषय रूप प्रयोजन के कारण (बन्ध होता है)।

कर्म नष्ट होने पर जीव की स्वभावगति

गाहा—आउस्स खयेण पुणो, णिण्णासो होदि सेसपयडीणं।
पच्छा पावदि सिग्घं, लोयग्गं समयमेंत्तेण ॥
॥१२-१८-१७६॥

अन्वयार्थ—(पुणो) फिर—केवली को (आउस्स) आयु कर्म के (खयेण) क्षय होने से (सेसपयडीणं) शेष कर्म प्रकृतियो का (णिण्णासो) सम्पूर्ण नाश (होदि) हो जाता है (पच्छा) पश्चात् (सिग्घं) शीघ्र (समयमेंत्तेण) एक समय मात्र मे (लोयग्गं) लोक के अग्र भाग मे (पावदि) पहुँच जाते है।

अर्थ—फिर (केवली को) आयु कर्म के क्षय होने से शेष कर्म-प्रकृतियों का सम्पूर्ण नाश हो जाता है। पश्चात् वे शीघ्र एक समय मात्र मे लोक के अग्रभाग मे पहुँच जाते है।

गाहा—जाविजरमरणरहिदं, परमं कम्मट्ठवज्जिदं सुद्धं ।
णाणाविचउसहावं, अक्खयमविणासमच्छेदं ॥
॥१२-१६-१७७॥

अन्वयार्थ— (**जादिजरमरणरहिदं**) जन्म, जरा, मरण से रहित (**परमं**) परम (**कम्मट्ठवज्जिदं**) अष्ट कर्मों से रहित (**सुद्धं**) शुद्ध (**णाणाविचउसहावं**) ज्ञानादि चार स्वभाव वाला (**अक्खयं**) अक्षय (**अविणासं**) अविनाशी—और (**अच्छेदं**) अच्छेद्य है ।

अर्थ—(वह परमात्मा) जन्म, जरा, मरण से रहित, परम, अष्ट कर्मों से रहित, शुद्ध, ज्ञानादि चार स्वभाव वाला, अक्षय, अविनाशी और अच्छेद्य है ।

गाहा —अव्वाबाहमणिंदियमणोवमं पुण्णपावणिम्मुक्कं ।
पुणरागमणविरहिदं, णिच्चं अचलं अणालंबं ॥

॥१२-२०-१७८॥

अन्वयार्थ – वह परमात्मा (**अव्वाबाहं**) अव्याबाध (**अणिंदियं**) अतीन्द्रिय (**अणोवमं**) अनुपम (**पुण्णपावणिम्मुक्कं**) पुण्य-पाप से निर्मुक्त (**पुणरागमणविरहिदं**) पुनरागमन से रहित (**णिच्चं**) नित्य (**अचलं**) अचल (**अणालंबं**) निरालम्ब है।

अर्थ—(वह परमात्मा) अव्याबाध, अतीन्द्रिय, अनुपम, **पुण्य-**पाप से निर्मुक्त, पुनरागमन से रहित, नित्य, अचल और निरालम्ब है।

गाहा — **ण वि दुक्खं ण वि सुक्खं, ण वि पीडा णेव विज्जदे बाहा ।**
ण वि मरणं ण वि जणणं, तत्थेव य होदि णिव्वाणं ।।
।।१२-२१-१७९।।

अन्वयार्थ — (**ण वि दुक्खं**) न तो जहाँ दुःख है (**ण वि सुक्खं**) न सुख है (**ण वि पीडा**) न पीडा है (**णेव बाहा विज्जदे**) न बाधा है (**ण वि मरणं**) न मरण है (**ण वि जणणं**) न जन्म है (**तत्थेव य**) वही (**णिव्वाणं**) निर्वाण (**होदि**) है ।

अर्थ— (जहाँ) न तो दु.ख है. न सुख है, न पीडा है, न बाधा है, न मरण है और न जन्म है, वही निर्वाण है ।

गाहा—**ण वि इंदियउवसग्गा, ण वि मोहो विम्हयो ण णिद्दा य ।**
ण य तण्हा णेव छुहा, तत्थेव य होदि णिव्वाणं ॥
॥१२-२२-१८०॥

अन्वयार्थ—जहाँ (**ण वि इंदियउवसग्गा**) इन्द्रियाँ नही, उपसर्ग नही (**ण वि मोहो**) मोह नही (**ण विम्हयो णिद्दा य**) विस्मय और निद्रा नही (**ण य तण्हा**) तृषा नही (**णेव छुहा**) क्षुधा नही (**तत्थेव य**) वही (**णिव्वाणं**) निर्वाण (**होदि**) है ।

अर्थ—(जहाँ) इन्द्रियाँ नही, उपसर्ग नही, मोह नही, विस्मय और निद्रा नही, तृषा नही, क्षुधा नही, वही निर्वाण है ।

गाहा—ण वि कम्मं णोकम्मं, ण वि चिंता णेव अट्टरुद्दाणि ।
ण वि धम्मसुक्कझाणे, तत्थेव य होदि णिव्वाणं ॥
॥१२-२३-१८१॥

अन्वयार्थ—(**ण वि कम्मं णोकम्मं**) जहाँ न कर्म है, न नोकर्म है (**ण वि चिंता**) न चिन्ता है (**णेव अट्टरुद्दाणि**) न आर्त और रौद्र ध्यान है (**ण वि धम्मसुक्कझाणे**) न धर्म और शुक्ल ध्यान है (**तत्थेव य**) वही (**णिव्वाणं**) निर्वाण (**होदि**) है ।

अर्थ—जहाँ न कर्म है, न नोकर्म है, न चिन्ता है, न आर्त और रौद्र ध्यान है, न धर्म और शुक्लध्यान है, वही निर्वाण है ।

सिद्ध भगवान के स्वभाव गुणों का कथन

गाहा—विज्जदि केवलणाणं, केवलसोंक्खं च केवलं विरियं ।
केवलदिट्ठि अमुत्तं, अत्थित्तं सप्पदेसत्तं ॥
॥१२-२४-१८२॥

अन्वयार्थ—वहाँ (केवलणाणं) केवलज्ञान (केवलसोंक्खं) केवल सौख्य (च) और (केवलं विरियं) केवल वीर्य (केवलदिट्ठि) केवल दर्शन (अमुत्तं) अमूर्तत्व (अत्थित्तं) अस्तित्व (सप्पदेसत्तं) सप्रदेशत्व रहते हैं ।

अर्थ—वहाँ केवल ज्ञान, केवल सौख्य, केवल वीर्य, केवल दर्शन, अमूर्तत्व, अस्तित्व और सप्रदेशत्व रहते है ।

निर्वाण (सिद्धि) और सिद्ध का अभेद

गाहा—**णिव्वाणमेव सिद्धा, सिद्धा णिव्वाणमिदि समुद्दिट्ठा ।**
कम्मविमुक्को अप्पा, गच्छदि लोयग्गपज्जत्तं ॥
॥१२-२५-१८३॥

अन्वयार्थ-- (**णिव्वाणमेव**) निर्वाण ही (**सिद्धा**) सिद्ध है (**सिद्धा**) सिद्ध ही (**णिव्वाणं**) निर्वाण है (**इदि**) ऐसा (**समुद्दिट्ठा**) शास्त्र मे कहा है (**कम्मविमुक्को**) कर्म रहित (**अप्पा**) आत्मा (**लोयग्ग-पज्जत्तं**) लोक के अग्रभाग पर्यन्त (**गच्छदि**) जाता है ।

अर्थ—निर्वाण ही सिद्ध है, सिद्ध ही निर्वाण है, ऐसा शास्त्र मे कहा है । कर्मरहित आत्मा लोक के अग्रभाग पर्यन्त जाता है ।

गाहा—जीवाण पोंग्गलाणं, गमणं जाणेहि जाव धम्मत्थी।
धम्मत्थिकायभावे, तत्तो परदो ण गच्छंति ॥

॥१२-२६-१८४॥

अन्वयार्थ—(**जाव**) जहाँ तक (**धम्मत्थी**) धर्मास्तिकाय है—वहाँ तक (**जीवाण पोग्गलाणं**) जीव और पुद्गलों का (**गमणं**) गमन (**जाणेहि**) जानो (**धम्मत्थिकायभावे**) धर्मास्तिकाय का अभाव होने से (**तत्तो**) उससे (**परदो**) आगे (**ण गच्छंति**) वे नहीं जाते।

अर्थ—जहाँ तक धर्मास्तिकाय है, वहाँ तक जीव और पुद्गलों का गमन जानो। धर्मास्तिकाय का अभाव होने से उससे आगे वे नही जाते।

गाहा—**णियमं णियमस्स फलं, णिद्दिट्ठं पवयणस्स भत्तीए।**
पुव्वावर विरोधो जदि, अवणीय पूरयंतु समयण्हा ॥
॥१२-२७-१८५॥

अन्वयार्थ—(**णियमं**) नियम और (**णियमस्स फलं**) नियम का फल (**पवयणस्स भत्तीए**) प्रवचन-भक्ति से (**णिद्दिट्ठं**) मैने कहे है (**जदि**) यदि (**पुव्वावर विरोधो**) पूर्वापर विरोध हो तो (**समयण्हा**) आगम के ज्ञाता पुरुष (**अवणीय**) उसे दूर करके (**पूरयंतु**) पूर्ति कर ले।

अर्थ—(मैने) नियम और नियम का फल प्रवचन-भक्ति से कहे है। यदि (उसमे कहीं) पूर्वापर विरोध हो तो आगम के ज्ञाता पुरुष उसे दूर करके पूर्ति कर लें।

गाहा—ईसाभावेण पुणो, कोई णिदंति सुंदरं मग्गं ।
तेसिं वयणं सोच्चाभत्तिं मा कुणह जिणमग्गे ॥१२-२८-१८६॥

अन्वयार्थ—(पुणो) पुनः (कोई) कई पुरुष (ईसाभावेण) ईर्ष्या-भाव से (सुंदरं मग्गं) सुन्दर मार्ग की (णिदंति) निन्दा करते हैं (तेसिं वयणं) उनके वचन (सोच्चा) सुनकर (जिणमग्गे) जिनमार्ग के प्रति (अभत्ति) अभक्ति (मा कुणह) मत करो।

अर्थ—पुनः कई पुरुष ईर्ष्याभाव से सुन्दर मार्ग की निन्दा करते है। उनके वचन सुनकर जिनमार्ग के प्रति अभक्ति मत करो।

गाहा—**णियभावणाणिमित्तं, मए कदं णियमसारणामसुदं ।**
णच्चा जिणोवदेसं, पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं ॥
॥१२-२९-१८७॥

अन्वयार्थ—(**पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं**) पूर्वापर दोष रहित (**जिणोवदेसं**) जिनोपदेश को (**णच्चा**) जानकर (**मए**) मैंने (**णियभावणाणिमित्तं**) निज भावना के निमित्त से (**णियमसारणामसुदं**) नियमसार नामक शास्त्र (**कदं**) बनाया है ।

अर्थ—पूर्वापर दोष रहित जिनोपदेश को जानकर मैंने निज भावना के निमित्त से नियमसार नामक शास्त्र बनाया है ।

इदि सुद्धोवओगाधियारो बारसमो सुदखंधो समत्तो

परिसिट्ठ

गाहाणुक्कमणिका

गाथा क्रमांक

गाथा क्रमांक

त

	गाथा क्रमांक
म	
मग्गो मग्गफलं ति य	२
मदमाणमायलोह	११२
ममत्ति परिवज्जामि	९९
माणुस्सा दुवियप्पा	१६
मिच्छत्त पहुदिभावा	९०
मिच्छादसणणाण	९१
मुत्तममुत्तं दव्वं	१६७
मोॅक्खपहे अप्पाणं	१३६
मोॅक्खगद पुरिसाणं	१३५
मोॅत्तूण अट्टरुद्द	८९
मोॅत्तूण अणायारं	८५
मोॅत्तूण वयणरयण	८३
मोॅत्तूण सयलजप्प	९५
मोॅत्तूण सल्लभावं	८७
र	
रयणत्तय सजुत्ता	७४
रागादी परिहरण	१३७
रागेण व दोसेण व	५७
ल	
लद्धूण णिधि एॅक्को	१५७
लोयायासे ताव	३६
लोयालोयं जाणदि	१६९
व	
वट्टदि जो सो समणो	१४३
वण्णरसगंधफासा	४५
वदसमिदि सीलसंजम	११३
वयणमयं पडिकमणं	१५३
वयणोच्चारणकिरियं	१२२

गाथा क्रमांक